

श्री ३३

दयानन्द महाविद्यालय संस्कृत-ग्रन्थमाला ।

अनेक विद्वानों की सहायता से

भगवद्दत्त

संस्कृताध्यापक वा अध्यक्ष रीसर्च-विभाग

दयानन्द महाविद्यालय, लाहौर द्वारा

सम्पादित ।

ग्रन्थाङ्क १ ।

श्री ३म्  
अथर्ववेदीय-पञ्चपटलिका

अर्थान्  
अथर्ववेद का तृतीय लक्षण ग्रन्थ ।  
भारानुवाद-सहित ।

सम्पादक

भगवद्दत्त वी० ए०

संस्कृत-शास्त्र दयानन्द कालेज, लाहोर ।

भारत सम्प्रदाय १९६०-६१ १०२०

विज्ञान मन्त्र १९७७

सन् १९७० ई०

दयानन्दाष्ट ३७

प्रथमद्वारा ५०० प्रति ]

[ मूल्य १५ रु०

---

Printed by Bhairo Prasada,  
MANAGER VIDYA PRAKASHA PRESS LAHORE,  
*And published by*  
THE RESEARCH DEPARTMENT D.A.V. COLLEGE, LAHORE

---



वेददात्रे परमगुरवे नमोनमः ।

## अथर्ववेदीय पञ्चपटलिका ।

भूमिका ।

आर्यावर्तिय इतिहास का मध्यम-काल पौराणिक याज्ञिक काल कहा जा सकता है । पौराणिक इस लिये कि उस समय यज्ञों का वास्तविक अर्थ जो वैदिक काल में प्रचलित था, भूल चुका था या भुलाया जा रहा था । उस काल में याज्ञिक सम्प्रदाय के प्रभाव से यजुर्वेद और उसी की शाखाओं का अधिक अध्ययनाध्यापन होता था । अन्य वेद बहुत पीछे पड़ गये थे, और उन में से भी अथर्ववेद का पठन पाठन अत्यल्प रह गया था । फलतः अथर्ववेद सम्बन्धी वाङ्मय भी पीछे पड़ गया । अथर्ववेद सम्बन्धी उन्हीं भूले हुए ग्रन्थों में से यह पञ्चपटलिका भी एक है । आधुनिक काल में इस के विषय आदिकों का सब से प्रथम सुविस्तृतलेख पण्डित शङ्करपाण्डुरङ्ग का है । उन्होंने सायणभाष्य-सहित अथर्ववेद के सम्पादन में इस से पर्याप्त सहायता ली थी । तदनन्तर विहट्टने ने स्वलिखित अथर्ववेदानुवाद की भूमिका में इस का उद्धरण किया । उक्त दोनों से पञ्चपटलिका की उपयुक्तता का परिचय पाकर ही मैंने इस ग्रन्थ के सम्पादन का साहस किया है । इस के सम्पादन में निम्नलिखित सामग्री काम में आई है ।

हस्तलिखित वा प्रकाशित प्राप्त-सामग्री ।

(अ) यह ग्रन्थ भण्डारकर अनुसन्धान समिति का है । उन

के सन् १९१६ के सूचीपत्रानुसार इस की संख्या ४०० है । इस सख्यान्तर्गत ग्रन्थ में आठ भिन्न २ पुस्तक हैं । उन में पञ्चपटलिका चतुर्थ स्थान पर है । इस का आरम्भ है पत्र ४८ से और समाप्ति है पत्र ५६ पर । इस के लेखन कालादि के विषय में अन्तिम पुस्तक की समाप्ति पर यह वचन मिलता है —

“संवत् १७२७ वर्षे भाद्रपदमासे कृष्णपक्षे ११ रविवासरे  
अथे श्री अनङ्गपुर पतनमध्ये वास्तव्यं आभ्यन्तरनागर ज्ञातीय  
पंचोली सोमजीश्रुत वृहस्पति जी पठनार्थं ॥ शुभं भवतु ।  
कल्याणमस्तु ॥ श्री ॥ ॥ श्री ॥ ॥ श्री ॥ ॥”

यह पुस्तक स्पष्टाक्षरों में बहुत शुद्ध लिखा हुआ है ।

( व ) पूर्वोक्त सूचीपत्र में इस की संख्या ३९६ है । इस ग्रन्थ में इस के साथ तीन अन्य पुस्तकें हैं । स्थान इस का प्रथम और पत्र १—१० तक हैं । सूचीपत्र में लिखा है “The ms comes from Bikaner” अर्थात् हस्तलेख धीकानेर से आया है । यह इतना शुद्ध नहीं । कई स्थलों में विन्दु दिये जाने से प्रतीत होता है क्रियदप्रति-लिपि किसी अनि प्राचीन और कहीं २ कमिभुक्त पुस्तक से की गई है । इस ग्रन्थ के अन्त में कोई तिथि नहीं दी गई । आकृति से यह लगभग तीन चौथाई शताब्दी का प्रतीत होता है ।

‘अ’ और ‘ब’ दोनों पुराणों का संशोधन हड़ताल से किया गया है ।

यह ‘अ’, ‘ब’ दोनों पुस्तक किसी एक से या एक प्रकृति वाले पुराने ग्रन्थों से नफल किये गये हैं । कारण कि दोनों में प्रायः एक ही अनुश्रियां, एक सा लेख और एक से ही अक्षर छूटे हैं । यह

यात मुद्रितपुस्तक के नीचे दिये हुए पाठभेदों के धरने से स्पष्ट ज्ञात हो गी । यदि यह एक ही ग्रन्थ से निकल किये गये हें तः यह कहना निरर्थक है कि 'अ' बहुत पहले नकल किया गया था और 'ब' बहुत पीछे । निश्चय ही 'ब' के लिखे जाने के समय मूलपुस्तक वृमिशुक्त होगया था या फट रहा था, क्योंकि जैसा पहले कहा गया है 'ब' में बहुधा बिन्दु आते हैं ।

(बह) विहटने महाशय ने लण्डन ब्रिटिश अनुसूतालय से अथर्व-वेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणी नकल की थी । उस का सशोधन उन्होंने एक वर्लिन के हस्तलेख से किया था । उस में पञ्चपदलिका के पाठ भी कई स्थलों पर उद्धृत किये गये हैं । वही पाठ विहटने रचित अथर्ववेदानुवाद के प्रत्येक अनुवाक की समाप्ति पर मिलते हैं । ये उद्धरण चतुर्थ अर पञ्चमपदल के ही हैं । इन का पाठ कई स्थलों पर बहुत भ्रष्ट है ।

(श) एरिडत शङ्करपाण्डुरङ्ग ने स्वसम्पादित अथर्ववेदीय सायणभाष्य के Critical Notice 'आलोचनात्मक विद्यापन' में पञ्चपदलिका, पदल प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ अर पञ्चम के अनेक पाठ्य उद्धृत किये हैं । उन को देख कर विहटने रचित अनुवाद के सम्पादक श्री लैन्मैल ने लिखा था—

*Manuscripts of Pancapatali*—Doubtless S P. Pandit had a complete ms. of the treatise in his hands, It is not unlikely that the ms which S P. Pandit used was one of those referred to by Aufrecht, *Catalogus catalogorum*, p 315, namely Nos 178 79 (on p. 61) of Kielhorn's Report on the search of Sanskrit mss in the Bombay Presidency during the year 1880 81 (General Introduction (p LXXII)

१७६ तो हमारा 'अ' है । शंकरपाण्डुरङ्ग जी के पाठ इस से नहीं मिलते । अतः संभव है कि उन्होंने १७८ देखा हो जो हमारे पास नहीं है । इस से अधिक सम्भव यह भी है कि उन्होंने किसी अथर्व-वेदीय श्रोत्रिय से अपने लिये यह पुस्तक प्राप्त किया हो, जो न जाने अब कहां होगा ? इस अनुमान का यह कारण है कि पूर्वोक्त सूची-पत्र के १७८ और १७६ अंक वाले ग्रन्थ निकटस्थ स्थानों से प्राप्त होने के कारण, बहुत अंशों में एक दूसरे के समान प्रतीत होते हैं ।

पञ्चपटलिका कथं लिखी गई ?

अथर्ववेद भाष्य ३।१०।७ के अन्त में सायण (वि० सं० १४०७-४४) का यह वचन है —

“पूर्णा दर्शति पृथग्ग्रहणात् “ग्रहणम् आ ग्रहणान्” (कौ० ८।२१.) इति न्यायात् विनियोगनिषेये “आ मा पुष्टे च” इत्ये-  
कावसाना ऋक् । पञ्चपटलिकायां ( ३।११.) तु त्र्यवसाना  
एकैव ऋग् इत्युक्तम् । ”

यहां पञ्चपटलिका का मत उद्धृत किया गया है । इस के अनुसार ३।१०।७ तीन अवसानों वाली एक ही ऋचा है, परन्तु कौशिक सूत्रानुसार ये दो ऋचाएं हैं, पहली एक अवसान वाली और दूसरी दो अवसानों वाली ।

कौ० ८।२१, पर टीका करते हुए दारिल लिखता है —

“पुनरुक्तप्रयोगः । पञ्चपटलिकायामेव कथितः । भार्गु-  
संहितायाः कर्मसंयोगात् । आचार्य संहिताभ्यासार्थाः । ”

यहां पर दारिल ने पञ्चपटलिका के उक्तानुक्त न्याय की ओर संकेत किया है ।

अथर्ववेदीय परिशिष्ट सायण और दारिल में बहुत पूर्वकाल के हैं । उन में ४६ वां परिशिष्ट चरणव्यूह है । उस का वचन है —

“लक्षणग्रन्था भवन्ति । चतुरध्यायी, मातिशाख्यम्, पञ्चपटलिका, दन्त्योष्ठविधिः, बृहत्सर्वानुक्रमणी चेति ।”

अथर्ववेदीय सर्वानुक्रमणी पूर्वोक्त तीनों साधियों में निरसन्देह बहुत पूर्वकालीन है । यह बात चरणव्यूह के पूर्वोद्धृत वाक्य से परिशुद्ध हो जाती है । उस में स्थल २ पर पञ्चपटलिका के अनेक वचन “इति” पद लगा कर या बिना इसके लिगे गये हैं । अतः पञ्चपटलिका का काल पर्याप्त पुरातन है । कितना पुरातन, यह कहना अभी बहुत कठिन है ।

उपर्युक्त काल-क्रम-शृंखला में एक और बात भी ध्यान देने योग्य है । पञ्चपटलिका के प्रथम श्लोक में ही परिवर्धव्य का नाम आया है । यह पञ्चपटलिका उसी के मतानुसार कही गई है । इस परिवर्धव्य आचार्य का पता अथर्ववेदीय साहित्य में हमें नहीं मिला । एक उपरिवर्धव्य का पता कई स्थानों में लगना है । “पूर्वया कुर्वन्तेति गार्भ्य, पार्थश्रवस, भागलि, काङ्कायन, उपरिवर्धव्य, कौशिक, जाटिकायन, कौरपथयः” (कौ०-६।१०) । यहां आठ आचार्यों का नाम है । उपरिवर्धव्य उन में पांचवां है । यदि हमारा परिवर्धव्य इसका कोई सम्बन्धी है तो उसका मत जो पञ्चपटलिका में सप्रामाण्य मिलता है, अचर्य्य बहुत पुराना है ।

संहिता-भेद ।

पञ्चपटलिका ५।१७ में “आचार्यसंहिता” शब्द आया है । यह आचार्यसंहिता क्या थी, इस का निर्णय पूर्वोद्धृत दारिल के वाक्य में मिलता है । यथा—‘आर्षी संहितायाः कर्मसंयोगात् । आचार्यसंहिताभ्यासायः’ ( कौ० ८।२१, २२ ) । इस से ज्ञान होता है



कि जिस संहिता में उक्तानुक्तविधि चरितार्थ हो वह आचार्यसंहिता और जो विनियोगार्थ हो वह आर्षी संहिता कहाती है । विनियोग में मन्त्रों की कोई मात्रा भी नहीं छोड़ी जाती अतः उस में उक्तानुक्त न्याय वर्त्ता नहीं जाता ।

### संहिता-परिमाण ।

हस्तलिखित जितनी शौनकीय संहिताएं सम्प्रति मिलती हैं, वे सब बीस काण्डयुक्त हैं । सायणभाष्य भी बीसवें काण्ड के कुछ भाग पर मिल जाता है, यद्यपि उस में कुन्तापसूक्त ( १२७-१३६ ) नहीं है । इन्हीं कुन्ताप सूक्तों के विषय में प्रायः विद्वानों का मत है कि इन का पदपाठ नहीं हुआ, क्योंकि आज तक अप्राप्त है । दयानन्द सरस्वती भी ( सत्यार्थप्रकाश की समाप्ति पर अत्रोऽर्पणपद के आगे) अपूर्वसंहिता को बीस काण्डयुक्त ही मानते हैं । ब्लूमफील्ड, विहटने आदि पाश्चात्य लेखकों का मत है कि १८ काण्ड ही मूल संहिता-वर्तमान हैं । हरिप्रसाद ने वेदसूक्तस्य के अर्थ-संहिता प्रकरणमें मूल-संहिता का दश काण्ड पर्यन्त ही माना है । ये विचार क्या २ आधार रखते हैं, और इन में से कौन सा सत्य अथवा माननीय है, इस का विचार अर्थ बृहत्सर्वानुक्रमणी के सन्पादन हो जाने के पश्चात् किया जा सकता है । इस लक्षण ग्रन्थ में बीसवें काण्ड के भी ऋषि, देवता, छन्दादि दिये हैं, यद्यपि उन का आधार आश्व-लायन की अनुक्रमणी है । उस का ध्यान यह है —

“अर्षो अथार्थवर्गे विंशतितमकाण्डस्य मूक्तसंख्या संपदाया-  
द्यपिदेवतछन्दांस्याश्वलायनानुक्रमानुसारेणानुक्रमिष्यामः । खिला  
(नि) वर्तयेत्या ।” एतादृश पटन का प्रारम्भ ।

यहां इतना कहा जा सकता है कि पाश्चात्य लेखकों ने पञ्च-

पटलिका का आश्रय लिया है और इस में अठारह ही काण्डों का वर्णन है । देखो २१५ तथा ३१२ इत्यादि ।

पञ्चपटलिका में हमें एक ही बात पटकती है । वह है ३१२ और ४१७ में । ३१२ के अन्त पर तो हमारी टिप्पणी भी है, यही बात ४१७ के अन्त में आई है । दोनों स्थलों में काण्ड १७ का पहले वर्णन है और १८ का पीछे । उत्तर स्थल में “यम” काण्ड १८ के अनुवाकों में मन्त्र संख्या कह कर “विपालहि” प्रतीक धर के १७ वें काण्ड का उल्लेख है । अन्य सब स्थलों में क्रमशः काण्ड वा सूक्तों का उल्लेख और यहीं पर भेद विशेष सुन्देहोत्पादक है । सम्भव है अथर्ववेदीय किसी अन्य शाखा में ऐसा ही काण्डक्रम हो और तत्सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थ यह पञ्चपटलिका आदि हों ।

### संहिता-विभाग ।

अथर्ववेदसंहिता काण्ड, प्रपाठक, अनुवाक, सूक्त, मन्त्र, पर्याय, गण और व्यवसानों में विभक्त है । काण्ड रचना के सम्बन्ध में ब्लूमफील्ड और विहटने ने कल्पना की थी कि अठारह काण्ड तीन बड़े भागों में बाँटे जा सकते हैं । अर्थात्—

बृहद्	भाग	प्रथम	काण्ड १—७
”	”	द्वितीय	” ८—१२
”	”	तृतीय	” १३—१८

इन तीनों में अनुवाक, सूक्त और ऋचा आदि की रचना भिन्न २ क्रम से पाई जाती है । पञ्चपटलिका में भी “तिसृणामाकृतीनाम्” शब्द के प्रयोग से तीन प्रकार का विभाग किया है, परन्तु यह विभाग इस से कुछ थोड़ा सा भिन्न है । पटलिका में दूसरा भाग ८—११ काण्डों का और तीसरा १२—१८ काण्डों का है । ऋचा-गणना के लिये पटलिका का क्रम अधिक उपयोगी है । यह बात पिछले गणना-कोष्ठों के देखने से सुस्पष्ट प्रतीत होती है । यदि बर्लिन

संस्करणानुसार प्रत्येक पर्याय-सूत्र को एक एक सूक्त माने तो ८-११ काण्डों में दश २ सूक्त ही पाये जाते हैं। अतः दारहवां काण्ड अगले विभाग में मिलाया गया है।

अठारह काण्डों में कुल मन्त्र ४६२७ हैं। यह गणना विहितने से भिन्न है। उसके अनुसार मन्त्र-संख्या ४४३२ है। भिन्नता का कारण पर्याय-सूक्त हैं। यह सारा भेद विहितने के नोटों के देखने से विदित हो जाता है। हमने गणना पदलिकानुसार दी है। इसी के अनुकूल मुम्बई संस्करण छपा है।

अथर्ववेद के प्रथम अठारह काण्डों में ३५ पँतल स्थलों पर ४५ पँतालीस ऋचाएँ बड़ी हैं जो इसी संहिता के पूर्व स्थलों में भी आ चुकी हैं। उचीसत्रों काण्ड में छः स्थलों पर सात पेंसों ही ऋचाएँ हैं। इन्हीं ऋचाओं के सम्यन्ध में पदलिका १।४ में कुछ नियम लिखे गये हैं। यदि कोई अकेली ऋचा दोबारा आवे तो लिखित ग्रन्थों में "इत्येका", यदि दो आवें तो "इतिद्वे" इत्यादि लिखा होता है। इन्हीं सब ऋचाओं का क्रमशः वर्णान विहितने ने 'इयडैक्स चर्चॉरम' में किया था। उसी की संशोधित नकल विहितने के अनुवाद के पृ० cxix पर मिलती है। पाठकों के लाभार्थ हम उसे वहीं से उद्धृत कर देते हैं।

(१)	४	१७। ३	.. .. .	१	२८। ३
(२)	५	६। १	.....	४	१। १
(३)		२			७। ७
(४)		२३। १०-२	.....	२.	३२। ३-५
(५)	६.	५८। ३	.....	६.	३६। ३
(६)		८४। ४	.....		६३। ३
(७)		६४। १, २	.....	३	८। ५, ६
(८)		६५। १, २	.....	५.	४। ३, ४
(९)		१०१। ३	.....	४	४। ७

# भूमिका ।

(१०)	उ	२३। १	.....		१०।५
(११)		७५। १	.....		२१।७
(१२)		११२। २	.....	द.	२६। २
(१३)	घ.	३।१८	.....	पू.	२६।११
(१४)		२२	.....	७	७१। १
(१५)		६।११	.....	३.	१०। ४
(१६)	ङ.	१।१५	.....	ग.	८६। २
(१७)		३।२३	.....	३.	१२। ६
(१८)		१०। ४	.....	७.	७३। ७
(१९)		२०	.....		११
(२०)		२२	.....	द.	२२। १
(२१)	१०.	१। ४	.....	घ.	१८। ५
(२२)		३। ५	.....	द.	८५। १
(२३)		५।४६-७	.....	७.	८६। १,२
(२४)		४८-६	.....	घ.	३।१२-३
(२५)	११.	१०।१७	.....	पू.	८। ६
(२६)	१३.	१।४१	.....	ङ.	६।१७
(२७)		२।३८	.....	१०.	८।१८
(२८)	१४.	१।२३-४	.....	७	८१। १-२
(२९)		२।४५	.....		११२। १
(३०)	१८.	१।२७-८	.....		८२।४,५
(३१)		३।५७	.....	१२	२।३१
(३२)		४।२५	.....	१८.	३।६८
(३३)		४३	.....		६६
(३४)		४५-७	.....		१।४१-३
(३५)		६६	.....	७.	८३।३

(१) १६.	१३। ६ ...	...	...	६. ६७। ३
(०)	२३।३० ...	...	...	१६. २२।२१
(३)	२४। ४ ...	...	...	२. १३। २
(४)	२७। ४-५ ...	...	...	१६ १६। १,२
(५)	३७। ४ ...	...	...	५ २८।१३
(६)	५८। ५ ...	...	...	२. ३५।५

### ऋग्वेद वा अथर्ववेद में ऋचा-गणना प्रकार ।

ऋग्वेदीय कात्यायन सर्वानुक्रमणी के परिभाषा प्रकरण में एक सूत्र है। 'द्विद्विपदावृच समामनन्वि' १२।८ अर्थात् अध्ययन समय में वेदपाठी लंग दो २ द्विपदा ऋचाओं को एक रचना कर पढ़ते हैं। इस नियमानुसार ऋग्वेद के कुल मन्त्रों की गणना के समय इन द्विपदा ऋचाओं को द्विगुण करके गणना की जाती है। ऐसी द्विपदा ऋचाएं अथर्व संहिता में भी देख पड़ती हैं। उन्हें हम ब्रिटने के अनुवाद से लेकर नीचे देते हैं।

कां०	सू०	ऋचा	
२	१८	१-५	एकावसान ।
५	१६	१-११	"
६	७, ५०१	१-६*, ८-१७, २०- १, २४- ६,	"
१६	१८	१-१०	दो अवसान ।

\* ब्रिटने ने सावरी ऋचा को एनपदा माना है। धीकोनेर वाली सर्वानुक्रमणी में ऐसा लेख हमें नहीं मिला। तदनुसार यह भी द्विपदा है।

यहाँ पर पहले तीनों रथों की छिटा ऋचाओं की गणना पटलिका में की गई है। वहाँ इन ऋचाओं को द्विगुण नहीं किया गया ।

उन्नीसवाँ काण्ड पटलिका में आया नहीं, अतः उन की ऋचा-गणना स्वर्गानुक्रमण से मिला ली गई है। अन्तिम उदाहरण दो अवसानों का है और पहले तीनों में एक-एक अवसान नृपाण्ड हैं। वात्यायन अर्णा नर्दानुक्रमण में पाए दो अवसान वाली ऋचाओं का ही द्विगुण करना है, एक-दरानों दो नहीं। वृहस्पति-वर्णानुक्रमणी चाले ने तो दो अवसान वाली ऋचाओं को भी द्विगुण नहीं किया । अतएव जो नष्ट हुए हमने ऊपर दी हैं वे इन विषयों पर अधिक प्रकाश पढ़ने के अनन्तर कदाचित् फिर बदलती पड़ें ।

### ऋग्वेद और अथर्ववेद में ऋचाओं के अवसानों की तुलना ।

अथर्ववेदीय को ई एकावसाना ऋचा नहीं मिलती । इयवराज ऋचाओं में से पाँच के कुछ २ भाग ऋग्वेद में मिलते हैं । इससे यह न विचारना चाहिये कि वे ऋग्वेद में लिये गये थे और काल-क्रम के कारण इस प्रसव्या को पहुँचा गये हैं । आर्य इतिहासानुसार अथर्ववेद भी उतना ही प्राचीन है जितना कि ऋग्वेद अतएव अनेक सहशवाक्य वा वाक्य-समूह दोनों ग्रन्थों में प्रसंगतः कर्ता परमात्मा के एक होने से एक से आ सकते हैं । इसी प्रकार का अगली मन्त्र-तुलना में एक दश मन्त्र है । वह हमारे कथन को परिपुष्ट करता है । यह छः मन्त्र वा मन्त्रभाग ऋग्वेदीय सहश मन्त्र वा मन्त्रभागों के साथ विशेष विचारार्थ नीचे दिए जाते हैं ।

अथर्ववेदीय व्यवसान ऋचापं ।

(१) इमामग्ने शरणि मीमृषो नो  
यमध्वानमगाम दूरम् ।

प्रथमावसान ३।१५।४

(२) यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्व  
धि क्षियन्ति भुवनानि विद्या ।

प्रथमावसान ७।२६।३

(३) स्वस्तिदा विशांपतिर्वृद्धहा  
विमृधो वशी । प्रथमावसान ८।५।२२

(४) उदनादयमादित्यो विश्वेन  
तपसा सह । सपत्नान्मह्यं रन्धयन्  
मा चाहं द्विपते रथं तवेद् विष्णो  
यहुधा वीर्याणि ।

प्रथम, द्वितीयावसान १७।१।२४

(५) शीतिके शीतिकावति ह्यदिके  
ह्यदिकावति । मयद्भुक्त्य १ ऋ  
शभुव इमं स्व १भिं शमय ॥

द्वितीय, तृतीयावसान १८.३।६०

(६) आ त्वाग्ने इधीमहि युमन्ते  
वेवाजरम् । यद् घ सा ते पनीय-  
सी समिद् दीदयति यषि । इपं  
स्नोवृम्य आ भर ॥

आद्यन्त मन्त्र १८।५।८८

ऋग्वेदीय व्यवसान ऋचापं ।

इमामग्ने शरणि मीमृषो न  
इमसध्वानं यमगाम दूरात् ।

प्रथमावसान १।३।१।६

.....  
.....

द्वितीयावसान १।६५।२

स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृद्धहा  
विमृधो वशी ।

प्रथमावसान १०।१५।२२

.....  
सहसा सह । द्विपते मह्यं रन्धयन्मो  
अहं द्विपते रथम् ॥

आद्यन्त मन्त्र १।५।०।२३

.....  
मयद्भुक्त्वा ३ सु संगम इमं रथ १-  
भिं हरेय ॥

आद्यन्त मन्त्र १०।१६।१४

आ ते अग्ने इधीमहि .....

.....यद्घस्याते पनीयसी  
समिद्धीदयति यवीपं स्नोवृम्य  
आ भर ।

आद्यन्तमन्त्र ५।६।४

उपर्युक्त छटा मन्त्र कुछ पाठ-भेद के साथ ही ऋग्वेद में भी मिल जाता है। अथर्ववेद में त्र्यवसान और ऋग्वेद में दो ही अवसानों वाला है। इस मन्त्र पर विद्वान् ने स्वानुवाद में एक नोट दिया है। 'यह मन्त्र ऋग्वेद ५।६।४, सामवेद १।४१६ और २।३७२, तै० सं० ४।४।४।६ और मै० सं० २।१३।७ में मिलता है। इन सब ग्रन्थों का पाठ ऋग्वेद के समान है। शङ्करपाण्डुरङ्ग तीसरे पाद में 'यद् ध' पढ़ता है। हमारे हस्तलिखित ग्रन्थों में 'यद् ध' (पद् पा० यत् । ह) मिलता है।' पाश्चात्य लेखकों के अनुसार यदि यह मन्त्र मूलतः ऋग्वेद का था और वैसा ही सामवेद वा अन्य शाखाओं में मिलता है तो अथर्ववेद में इसका अकारण बदला जाना अवश्य अमान्य होगा। वे वैदिक आर्य्य जिनकी स्मृति शक्ति ने सामने सारा संसार जनशिर है, इतनी शीघ्रता से अपनी मान्य पुस्तक वेद के विषय में भूलने वाले न थे। और जो यह कारण कहो कि उन्होंने ऋग्वेद से पिछली संहिताओं में भाषा-परिवर्तन वा अन्य भेदों द्वारा पहले मन्त्रों को सरल करना चाहा तो भी युक्त नहीं। हम पूर्व कह आये हैं कि मूल अथर्ववेद ऋग्वेद जितना ही पुराना है, अतएव उस में तो ऋग्वेद के पाठ न आ सकते थे। शैक्वीय अथर्ववेद वही मूलवेद है वा नहीं, यह हम अभी नहीं कहते, परन्तु यह निश्चय ही सन्देह-सीमा से ऊपर है कि अथर्ववेद में ऋग्वेद से मन्त्र न लिये गये थे। ऐसी अवस्था में पूर्व दिये हुए मन्त्र कुछ और ही परिणाम देंगे, अर्थात् कर्ता परमात्मा ने मूल चार संहिताएं चार ऋषियों के हृदय में स्वतन्त्ररूपेण प्रकाशित कीं। हमारे इस लेख पर अनेक लोग आक्षेप करेंगे। उन से हम यही निवेदन कर देने हैं कि यहां यह बात केवल प्रसंगतः कही गई है; इसका सप्रमाण निरूपण हमारे एक और ग्रन्थ में है जो शीघ्र ही छपेगा। उसके देखने के अनन्तर जिस की जो इच्छा हो कहे।



कुछ पटलिका के अनुवाद के सम्बन्ध में ।

हमारे पास उक्तानुक्त-नियम-क्रम को साक्षात् देखने के लिये कोई लिखित संहिता नहीं, अतएव प्रथम पटल के अनुवाद में बहुत सन्देह रहा है । अनुवाद हम ने इस लिये दे दिया है कि आगे उस से सहायता ली जा सकेगी । पटलिका के अनेक पाठ सन्दिग्ध ही रहे हैं । उन के विषय में हम कुछ कर नहीं सकते थे । हस्तलिखित सामग्री अत्यल्प थी । मूल ग्रन्थ वा अनुपादादि में जो प्रतीकादि का पता दिा गया है वह बर्लिन संस्करणानुसार है । अजमेर संस्करण इस की नकलमात्र है ।

इस ग्रन्थ की अनेकघातों के समझने और पाठादि निर्धारित करने में अपने कालेज के बी० ए० के 'विद्यार्थी' शास्त्री भीमदेव ने मुझे बड़ी सहायता दी है । मेरे मित्र पं० विश्वबन्धु पम० ए० ने भी मुझे कई स्थलों पर अपनी सम्मति देकर कृतार्थ किया है । म० देशराज विद्यार्थी बी० ए० श्रेणी तों बहुत काल से मेरे ग्रंथों का प्रूफ संशोधन करते ही हैं । इन सब सज्जनों का मैं हार्दिक ग्न्धवाद करता हूँ । अन्य अनेक विद्वानों के प्रति भी कि जिन के ग्रन्थों से मैं ने बहुत सहायता प्राप्त की है, मैं यहां अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ । अन्न में महाशय ए० सी० बृलतर एम० ए० प्रिन्सिपल ओरियण्टल कालेज तथा श्री डाक्टर गेलगेल टर एम० ए० का मैं प्रतीय धन्यवाद करता हूँ कि जिनकी उदारता से मुझे मूल हस्तलेख प्राप्त हुए ।

सर्गान्तर्यामी, वेदप्रकाशक आदिगुरु परमात्मा सर्व अर्घ्यजनों के हृदयों में पुनरपि वेदादि सत्य शास्त्रों के पढ़ने का उत्साह उत्पन्न करें । इत्योम् ।

दयातन्द् ५० वं० कालेज  
लालबन्धु पुस्तकालय लखनपुर,  
जेष्ठ अदि १३२३ वि० सं० १९०३

{ भगवद्भक्त

---

अथ

अथर्ववेदीय-पञ्चपटलिका

---

ओं



उक्तानुक्तस्य यं न्यायं प्रोवाच परिवर्भवः<sup>१</sup>

पर्यायाणामृचां वापि तद्वक्ष्यामो यथाक्रमम् ।

यहूना मव्यवेताना मनेकं सदृशं पदम् ।

आदिष्टं<sup>२</sup> तेषु वा यत्स्यात्तदुक्तानुक्तमुच्यते ।

तदुत्पत्तौ तु संशब्दमंत्ये प्रकरणस्य च ।

अन्यत्रैकं पदं वाच्यं तस्यारंभविरामयोः ।

अंत्यभारंभरां विद्यादाद्यं विरमरां भवेत् ।

ते हः, गतरिक्षे, च विद्यादत्र निदर्शनम् ।

यतस्तु<sup>३</sup> निवृत्तिः स्यादाद्यस्यांत्यस्य वा पुनः ।

तेनैव तत्र वक्तव्ये तयोश्चानंतरे पदे ।

ने चकु, सूकसत्तम्यां दिशो वापुर्निदर्शनम् ॥१॥

आकारो यत्र वाद्यं स्यात्तत्रापि द्वे पदे वदेत् ।

सा पितृप्रभृतिष्वेहीत्येतदत्र निदर्शनम् ।

अवसानैकदेशश्च यो गच्छेदवसानताम् ।

प्रक्रमस्य समाप्त्यर्थे तत्रापि द्वे पदे वदेत् ।

यात्र, स्कमतमित्येते विद्यादत्र निदर्शनम् ।

अवसानं तु यद्भूत्वा भवेदवयवः पुनः ।

१. अ, आदिष्ठ ॥ २. अ, व, सातदुक्त ॥ ३. अ, व, अत्य ॥

४. २।१-१।२ ॥ ५. २।१-२, १ ॥ ६. अ, व, निवृत्ति ॥ ७. ५।३-१।१ ॥

८. ५।१-०।१ ॥ ९. व, सातत्र ॥ १०. २।१-०।४, २ ॥ ११. १।१-२।२ ॥ १२. १।०।४ ॥

पांत्या वदवसानानां तासामप्येवमुत्सृजेत् ।  
 वीरुतशेत्रिय नाशनीत्येतदत्र निदर्शनम् ।  
 अवसानं तु यत्तुल्यं सर्वमेवतदुत्सृजेत् ।  
 तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चत, वैकुर्वत निदर्शनम् ।  
 यास्वेषविधिरुक्तासु तासु सर्वासु वैद्यदि ।  
 सदृग्यंत्यवसानानां तासामप्येवमुत्सृजेत् ।  
 यथाद्यौश्च, शेरभक्त, यो वै नैदाध नाम ।  
 यथा वातो वनस्पतीनित्येतदत्र निदर्शनम् ॥२॥  
 नानावसानयोर्भूत्वा यदेकस्मिन्पुनर्भवेत् ।  
 तेनैव तत्समाप्तव्य मेकस्मिन्चापि कीर्त्तयेत् ।  
 समिमामुत्तराणां च विद्यादत्र निदर्शनम् ।  
 पर्यायेष्ववसानानामृग्भिस्तुल्योविधिर्भवेत् ।  
 सर्वदा, चिप्रमित्येते वैपरंते निदर्शनम् ।  
 गणास्तु ये वसानानां संबंधार्थाः पृथक्पृथक् ।  
 तेष्वर्था विधिवद्बोध्याः सोदक्राम निदर्शनम् ।  
 अव्ययेषु च यद्दृष्टं व्यवृतेष्वपि दृश्यते ।  
 नत्तुल्यं व्यवर्धयेत् तस्मिंस्तकीर्त्तयेत्सकृत् ।  
 यदेनमाह वाप्येति चतुर्यस्तं निदर्शनम् ।

१. व वगानां ॥ २. शिवा२॥ ३. अ, व, तमिन्द्र. प्रत्यमुञ्चत ॥ ४.  
 सा५१३२॥ ५. २।५।१॥ ६. २।२५।१॥ ७. अ, व, प्राम, सा५।१.३१ ॥  
 ८. १।५।१३॥ ९. १।२।२।०५॥ १०. ५।१५।२॥ ११. १।०।१।२२॥  
 १२. १।२।१।१॥ १३. अ, विद्यादत्र ॥ १४. अ, वि (दि ! ) विधिः ॥ १५. २।०।२॥  
 १६. अ, व, यदृष्टं ॥ १७. १।५।१।१।५ ॥

अत उद्धे यथोक्तेन न्यायेन पुनस्तुजेत् ।  
 अन्ते च कीर्त्तयेत्तेन ते वश इति निर्देशनम् ॥३॥  
 अचस्तुल्याः पुनश्चेत्स्युर्यावत्तासां विशेषणम् ।  
 तावदुक्ता यथाशास्त्रमिति नासंदर्धीति च ।  
 नतः संप्यां प्रयुंजीत या शशापेति निर्देशनम् ।  
 द्वयोः न चो मनासीति तिसृणामत्रिवत्स्मृतं ।  
 एकेति यत्र संदेहः पूर्वत्येनां विशेषयेत् ।  
 यास्ते धाना इति पूर्वत्येतदत्र निर्देशनम् ।  
 यत्र द्वे इति संदेह आदौ तत्र च कीर्त्तयेत् ।  
 पूर्वापरं, नवो च इत्येतदत्र निर्देशनम् ।  
 एका मिति नाप्रदेशे द्वे तिन्य इति कीर्त्तयेत् ।  
 चर्ग चर्चा पदांत्याहुर्यावत्तासां विशेषणम् ॥ ४ ॥

इति प्रथमः पटलः समाप्तः ॥

१. अ, व, पुन. धेत ॥ २. १२८३॥ १३७३॥ ३. ३८३॥ ६८३॥  
 ४. १८३॥ १८३॥ ५. ७८३॥ [१३२१३॥] १४३२३॥  
 ६ १४३२३॥

भावमघातः छंदसि । तिसृणामाहृतीनां सूक्तवर्णक मृष्य पर्या-  
यिक यजुषामवसानं च विज्ञानाय व्याख्यास्यामः । चतुर्षु कांडेष्वादितः  
३ ऋक्सूक्ता अतुराकाः पञ्चवर्जम् । महत्सूक्तेक वर्जम् । दश सूक्तास्त्वेषु  
पंचवर्जम् । ऋक्सूक्ता एकत्रेषु । द्विसूक्ताः क्षुद्रेषु । अनुवाकसूक्ता  
एकानृचेषु । कांडसूक्ताः शेषे पर्यायिकवर्जम् । ब्राह्म्यप्राजापत्योरेव  
पृथग्विभाषितमुत्तरं यत् । सूक्तावस्था यथा कांडम् । तत्र न प्रत्युपायो न  
दुर्यापयः ? आपवादिका न्यधिकानि । महत्सु कांड समवायोऽर्चं प्रभृ-  
तीनामाहृतीनामष्टादशोभ्यः पांडशवर्जम् ॥५॥

ये त्रिपता (१।१) ये ३ स्यांस्य (३।६) यद्येक वृषोसि (५।४)  
इति परम्ताः । अनु सूर्यमुदयताम (१।५) अग्नीवर्त्तेन (१।६) दृष्या  
दृषिरसि (२।३) इति मत्तम्ताः । भ्रातृव्यक्षयणम् (३।५) इति नवमुक्ताः ।  
इमा यास्तिघ्नः पृथिवीः (६।३) वैश्वानरः (६।७) संदानं वो (६।११)  
यद्देवा देवहेडनम् (६।१२) इत्येकादशमुक्ता । वनस्पते वीङ्गवंगः (६।१३)  
इत्यष्टादशमुक्ताः । एकत्रेषु प्रथमचतुर्थी त्रयोदशमुक्ता । द्वितीयाष्टमौ नव । तृती-  
याष्टमौ षोडश । पंचमस्तमावष्टौ । षष्ठ्यनुदश । नवमो द्वादश ॥६॥

विदूमा शरस्य पितरम् (कां० १ सू० ३) द्वितीय नवकम् । स्तुवान-  
मग्ने (७) मत्त । घण्ट ते पूषन् (१।११) अग्नीवर्त्तेन (२।६) इति परम् ।  
इयं वीरुत् (३।४) इति पच ।

१. घ, त्रिप्य ॥ २. व मे नहीं है । अ मे भी पीडे हाशिये पर लिखा गया  
है ॥ ३. घ, व, पञ्चवर्जम् ॥ ४. घ, व, य ॥ ५. इन कोष्ठो मे काण्ड और  
अतुराक दिये है ॥ ३. अ, व, विधानः ॥ ४. व, पचम ॥

अदो यद्वधावति (२ । ३), दीर्घायुत्वाय (४) इति पठ्क । इन्द्र  
 जुपस्व (५) इति सप्त । क्षेत्रियात् त्वा (१०) धावापृथिवी उरु (१२)  
 इत्यट्के । निः सालां धृष्णुम् (१४), यथा द्यौश्च (१५) इति पठ्क । भ्रोजो-  
 स्योजो मे (१७) सप्त । शेरमक (२४) अष्टौ । ने छद्मुः (२७), पार्थिवस्य  
 (२९) इति सप्तक । उद्यन्नादित्यः (३२) पठ् । अक्षीभ्यां ते (३३) सप्त ।  
 आ नो अग्ने (३६) अष्टौ ।

आ त्वा गन् (३ । ४) सप्त । आयमगन् (५), पुमान्पुंसः (६) अष्टके ।  
 हरिणस्य (७) इति सप्त । प्रथमा ह (१०) त्रयोदश । मुंचामि त्वा (११)  
 अष्टौ । इहिव ध्रुवाम् (१२) नव । यद्वदः संप्रयतीः (१३) सप्त । इन्द्रमहम्  
 (१५) अष्टौ । प्रातरग्नि (१६) सप्त । सीरा मुञ्जति (१७) इति नव । सं-  
 शितं मे (१९) अष्टौ । अयं ते योनिः (२०), ये अग्नयो (२१) दशके ।  
 अयस्यतीः (२४) सप्त । यद्राजानो (२६) अष्टौ । सहृदयम् (३०) सप्त ।  
 इदेवा (३१) एकादश ।

य आत्मदा (४।२), यां त्वा गन्धर्वो अखनद् (४), ब्राह्मणो जज्ञे (६)  
 इत्यष्टकानि । एहि जीवम् (९) दश । अनङ्गवान दाधार (११) द्वादश ।  
 अजो ह्यग्नेः (१४) नव । समुत्पतन्तु (१५) षोडश । बृहन्न्येपाम् (१६) नव ।  
 ईशानां त्वा (१७), समं ज्योतिः (१८), उतो अस्य बन्धुक्कद् (१९) इत्यष्ट-  
 कानि । आ पश्यति (२०) नव । अहं रुद्रेभिः (३०), अप नः शोशुचदधम्

१. अ, व, क्षेत्रिया ॥ २. अ, व, पुंसः ॥ ३. अ, व, इहिव । यह अशुद्धि  
 माधारणतया हो सकती है । 'अ' प्रकार के पुराने ग्रन्थों में हि=है बनता है । अतः  
 लेखक प्रमाद से यही हि हो गया है ॥ ४. अ, व, तरग्नि ॥ ५. अ, व, पयः ॥  
 ६. अ, व, बृहन्येपा ॥ ७. अस्य ॥

(३३) ब्रह्मास्य शीर्षे बृहद् (३४) इत्यष्टकानि । तांस्तस्यौजाः (३६) दश । त्वया पूर्वम् (३७) द्वादश । पृथिव्यामग्रये (३९) दश । ये पुरस्ताज्जुह्वति (४०) इत्यष्टौ ।

ऋवङ्मंत्रः (५१), तदिदासं (२) इति नवके । ममाग्ने चर्चः (३) एकादश । यो गिरिपु (४) दश । रात्रि माता (५) नव । ब्रह्म जज्ञानम् (६) चतुर्दश । आ नो भर (७) दश । वैकङ्कतेन (८) इति नव । दिवे स्वाहा (९), अश्म चर्म मेसि (१०) इत्यष्टके ।

विच्छेद दोषस्तु पूर्वास्मिन्पापेदे ये व्यवसान्त्यने च देवहेडने ब्रह्मगव्यामंगरमा-  
मेव मेतगतुच्छेचान्यष्टर्था न व्यमिमीतान्यत आगमोहि ॥ ७ ॥

कथं महे (५११), समिद्धो अद्य (१२), ददिर्हि मह्यम् (१३) इत्येका-  
दशकानि । सुपर्णस्त्यान्वविदत् (१४) त्रयोदश । एका च मे (१५), यद्येक-  
वृंगंभि (१६) इत्येकादशके । ते घदन् (१७) अष्टादश । नैतां ते (१८),  
अतिमात्रम् (१९) इति पंचदशके । उच्चैर्घोषः (२०), विहृदयम् (२१)  
इति द्वादशके । अग्निस्तवमनम् (२२) चतुर्दश । आं ते मे चावापृथिवी (२३)  
त्रयोदश । सविता प्रमवानाम् (२४) इति गतदश । पर्वताद्दिवो योनेः  
(२५) इति त्रयोदश । यजुंषि यज्ञे (२६), ऊर्द्धा अस्य (२७) इति द्वादशके ।  
नय प्राणान् (२८) चतुर्दश । पुरस्ताद्युक्तो बह (२९) पंचदश । आचतस्ते  
(३०) गतदश । यां ते चक्रुः (३१) द्वादश ॥ ८ ॥

आययो (६१६), यद्येयं पृथिवी मही (१७), मिहे व्याघ्रे (३८),  
यत्ते देयो निःश्रुतिः (६३), य एनं परिर्पादन्ति (७६), अपचितः प्रपतत



(८३), यस्यास्त आसनि घारे जुहोमि (८४), चिञ्जित् प्रायमाणायै  
मा परि देहि (१०७), इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्धि (१११), विपाणा  
पाशान्विष्याव्यस्मद् (१२१), शकधूमं नक्षत्राणि (१२८), रथजिनां  
रथजितेयीनाम् (१३०) इति तृचेषु चतुश्चानि द्वादश ।

प्राग्गये वाचमीरय (३४), त्वं नो मेध (१०८), पत्नं भागम्  
(१२२), पत्नं सधस्याः (१२३), यं देवाः स्मरमसिचन् (१३२), य इमां  
देवो मेमलामाययंध (१३३), त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमा (१३८), न्यस्तिका-  
रुरोहिथ (१३९) इति तृचेषु पञ्चान्यष्टौ ॥६॥

धीती वा ये (का० ७ सू० १), यथा सूर्य (सू० १३), प्र नमस्व  
(१८), अयं सहस्रम् (२२), ययारोजस्ता (२५), अग्नाविष्णु महि (२६),  
यस्य व्रतम् (४०), अति धन्वानि (४१) इति द्वे (४२) । जनाद्विजनी-  
नात् (४५), कुहं देवीम् (४७) इति त्रीणि (४८ तथा ४९) । संज्ञानं न-  
(५२), ऋचं साम (५४), यदाशस्ता (५७) इति द्वे (५८) । यदग्ने तपसा  
(६१), इदं यत् कृष्ण (६४), प्रजावती (७५), वि ते मुञ्चामि (७८),  
यो नस्तायत् (१०८), शुम्भनी (११२) त्रीणि (११३ तथा ११४) । नमो  
रुराय (११६) इति द्वाचानि एकत्रेषु ।

प्रान्यात् (३५), सिनीवालि (४६), प्रतीचीनफल (६५), सर-  
स्वति व्रतेषु (६८), उत्तिष्ठताव (७२), सांतपना (७७), अनाधृष्यः  
[८४] अपि वृश्च [६०], उदस्य द्यावौ [६५], अग्ने इन्द्रश्च [११०]  
इति तृचानि ।

१ अ, विश्वजि । व, विश्वानि ॥ अ में मी 'न' को ही पीछे से 'ज' बनाया गया है ॥ २ इति त्रीणि ॥

अदितिर्घोः [६], प्रपथे पथाम् [६], सभा च मा [१२], अमित्यम  
देवम् [१४], घाता द-नात् नः [१७], यत्ते देवा अकृण्वन् [७६], पूर्णा  
पश्चात् [८०] इत्यत्रैकै प्राजापत्यम् । अप्सु ते राजन् [८३], अपो दिव्याः  
[८६], प्र पतेतः [११५] इति चतुर्वर्चानि ।

यज्ञेन यज्ञम् [५], इदं खनामि [३८], यत्किंचासी [७०] इति  
पंचवर्चानि ।

अन्वद्य नः [२०], पूर्वापरम् [८१] अम्यर्चत [८२] इति षड्वर्चानि ।

अमुत्रभूयात् [५३], ऊर्जे विम्रत् [६०], इदमुग्राय [१०६] इति  
सप्तवर्चानि ।

विष्णोर्नु कम् [२६], तिरश्चिराजेः [५६], यद्यत्वा [६७] इति  
अष्टवर्चानि ।

यथा वृक्षम् [५०] इति नववर्चं सूक्तम् ।

समिद्धो अग्निर्वृषणा [७३] इत्येकादशवर्चं धर्मसूक्तम् ।

अपचिताम् [७४] इति तदर्थं सूक्तानि चत्वारि । अपचिन्ने-  
पजम् । इर्ष्यापनयनम् । व्रतोपायनम् । गोष्ठव्रतीयम् च ॥६॥

इति द्वितीयः पटलः समाप्तः ।

१. श, इत्थं [मिति द्वे अ ?] संसूक्तानि ॥ २. श, तृतीयम् ॥

३. अ, व, इति द्वितीयोऽप्यायः पटलः समाप्तः ॥

प्रार्षीपापदे पूर्वे प्रोक्ता सूक्ता प्रथमस्यया ।

नियत वै ऋचामग्र मृषिभिश्च महापथः ।

सूक्तानां परिमाणार्थं ऋचामग्र प्रमाणात्मकम् ।

ऋचाग्रेण तु सूक्ताग्र सूक्ताग्रेण तु सहिताम् ।

तस्मात्सूक्ताग्रपरिमाणेन तपसाधीत्य सहिताम् ।

आर्षयी मृषिभिरभ्यस्तं सूक्तं सप्रदायामधीमहे ॥१०॥

सद्यासाद्यस्मभ्यमस्तु राति. (१२६२), सुपूदत मृडत (४) ।

प्राणापानौ (२१६१) शेरभके<sup>१</sup>यात ।

मुमुक्तमस्मान् (५१६८), दिवे स्वाहा (६१—६) इति पद । यद्येक-

वृषोसि (१६) इत्येकादश । यजूषि यज्ञे (२६१—११) इत्युत्तमा वर्जयित्वा ।

देवो देत्रेषु (२७२—७) इति पद ।

पृथिव्यै श्रोत्राय (६११) इति तिष्ठ । वीहि स्वाम् (८३४), स

पचामि (१२३४), दह प्रत्नान् (१३६२) ।

अथ सहस्रमा नो (७२२१), योज्ज्येद्यु (११६२) ।

ते त्वा रक्षन्तु (८११४) ।

पृथिवी दड. (६१२१), प्राच्या दिश शालाया (३२५—३१)

साहस्र इत्यात । तास्ते रक्षन्तु तत्र (५३८) ।

सोमो राजा (१०१२२), इमे मयूखा (७४४) ।

चक्षु श्रोत्रम् (११५२५) ।

ता न प्रजा (१२११६), अग्निवासा (२१), अग्ने अक्षव्यात्

१ अ, व, नै ॥ २ व, तस्मात्सुताप्रति ॥ ३ अर्थात् शेरभक (१५)

(२।४२), अन्तर्धिर्देवानाम् (४४), सर्वान्म्रे (४६) ।

धर्तासि धरुणोमि (१८।३।३६), उद्दपूरसि (१७), अक्षितिम् (४।२७), शुभंतां लोकाः विनृपदनाः (६७) इति द्वे । अग्नये कव्ययाहनाय (७१) इति प्रभृति येषु पितरः (८६) इत्यातः, एकावसाना ॥११॥

शं ते अग्निः (२।१०।२) इति मय ॥

धामा पुष्टे च पोषे च (३।१०।७), अभित्वा जरिमाहित (१।१।८), इमामग्ने शरणिाम् (१।५।४), उद्दप्यन्ताम् (१।६।६), यत्ते यर्चः (२।२।४), प्राची दिक् (२७) इति पदक । क इदम् (२।६।७) ।

इन्द्रो रूपेण (४।१।१७), एष यज्ञानाम् (३।४।५), नदीं यं त्वप्सरसः (३।७।३), या यैः परिनुत्यति (३।८।३), सूर्यस्य रश्मीन् (५), अन्तरिक्षेण (७) इत्युत्तमाम् । पृथिवीं घेनुः (३।६।२), अन्तरिक्षं घेनुः (४), धौर्घेनुः (६), दिशो घेनुः (८) ।

अधर्मघेन (५।१।६), इन्द्रायाहि (८।२), अत्रैनानिन्द्र वृषहव (६), उदायुद्ध (६।८), वृहता मनः (१०।८), देवो देवाय (१।१।१६), अयं लोकः (३।०।७) ।

अवैरहत्याय (६।२।३), विद्म ते स्वप्न जनित्रम् (४।६।२), यथा मांसम् (७।३।१) इति तिस्रः (२ तथा ३), यो अद्भ्यः (१।२।३), न्यस्तिका रुरोहिथ (१।३।१) ।

यस्योरुषु (७।२।३), पदनाः स्थ (७।५।२), अपेक्षारिः (८।८।१), यथा शेषः (६।३।३) ।

१. वर्तिन संस्कारण मे यह अचा दो अवसानों वाली है । मुम्बई संस्कारण मे तीन अवसान हैं ॥

मा त्वा ऋष्यात् (८।१।१२), शिष्रे ते स्वात् (२।१४), कदयपस्वाम  
(५।१४), स्वस्तिदा (२२), ये शालाः (६।१०), येषां पश्चात् (१५),  
उद्धविणाम् (१७), याः सुपर्णाः (७।२४) इनां जय (८।२४) ।

यद्वाग्निं (६।१।२४), अन्तरा घाम् (३।१५) ।

घारे अभूत् (१०।४।२६), अंग्रमर्गस्य (५।७) इत्यष्टौ (८—१४) ।  
विष्णांः क्रमंस्ति (२५) इत्येकदश (२६—३५) । तमिन्द्रः (६।७) इति  
चतस्र (८—१०), तेनेमां मणिना कृषिम (१२) इति पद (१३—१७) ।  
उत्तर द्विपत्. (३१), ये पुष्टये (७।१७) ।

नमन्ने घं पिशाभ्यः (११।२।३१), ये घादयः (६।१), अर्धुदिनाम  
(४), श्वन्वतीरप्सरस (१५), सङ्घरेऽधिवंशमाम (१६), ये च धीराः  
(२२), वनस्पतीन्वानस्पत्यान् (२४), ईशां घो मरुतां देव. (२५), ईशां घो  
वेदराज्यम् (१०।२), वायुरमिनायाम् (१६) ।

याणोऽधि (१२।१।८), यामश्विनौ (१०) इति चतस्रः (११—१३) ।  
महत्सवस्थम् (१८), भूम्यां देवेभ्यः (२२), यस्ते गन्धः पुरपेषु (२५),  
यच्छयानः पर्यावर्त्ते (२४), यापसर्वे विजमाना विमृग्वरी (३७), यस्यां  
सदो हविर्धाने (३८), यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति (४१), यां द्विपाद्.  
पक्षिणः संपतन्ति (५१), प्राच्यै त्वा दिशे (३।५५) इति पद (५६—६०) ।

१ बर्लिन संस्करण में चार अवसान हे । मुम्बई संस्करण में तीन अवसान  
देकर नीचे टिप्पण दिया है कि A R put a vertical stop after

यस्माद्वाताः (१३।३।२), यो मारयति (३), यः प्राणैः (४), अहा रात्रैर्विमितम् (८), सम्यञ्च तन्तुम् (२०), वि य प्रौर्णात् (२२) ।

इदं सु मे (१४।२।६), अद्वाद्द्वात् (६६) ।

शं ते नीहारो भवतु (१८।३।६०), यश पति (४।१३), आ त्वा अग्ने इधीमहि (८८) इति ।

विपासहि सहमानम् (१७।२।१) इत्यष्टौ (२-८) । त्वं न इन्द्रां-  
तिभिः (१०) इति चत्वारः (११-१३) । त्वं रक्षसे (१६), त्वमिन्द्रस्त्वं  
महेन्द्रः (१८) इति द्वे (१६) । उद्गादयमादित्यः (२४) इति त्रयवसानाः ॥१२॥

यो वै नैदार्यं नाम (६।५।३१), यो व आपोऽपां भाग (१०।५।१५)  
इति सप्त (१६-२१) । य इमे द्यावापृथिवी जज्ञान (१३।३।१) इत्येका ।  
यस्मिन्विराट् (६) इति त्रिः (७ तथा ८) । कृष्णं नियानम् (६) इत्ये-  
कादश (१०-१६) । निम्नुचस्तिस्त्र (२१), त्वसग्ने क्रतुभिः केतुभिः (२३)  
इति तिस्रस्त्वरवसानाः ।

यो वै कुर्वते नाम (६।५।३२) इति पञ्च (३३-३६) पञ्चावसानाः ॥१३॥

इति तृतीयः पटलः ।

१. बर्लिन सस्करण मे दो अवसान है । मुम्बई सस्करण मे तीन ही हैं ।  
दोनों में प्रथमावसान का भेद है ॥ २, अ, व, दोनों में बहुत भ्रष्टपाठ है ॥  
३ इस पर शकरपाण्डुराज का टिप्पण में पाठभेद देखो ॥ ४. अ, व, दोनों  
पुस्तकों में पाठक्रम यही है । न अने १८ वं काण्ड पहले और १७ वा पीछे  
क्यों आया !

प्राचप्रथम ऋचो नव स्युर्विधात् । पञ्च परे तु । पचमेऽष्टौ ।  
एकादश चोत्तरे पराः स्युः । विंशत्या कुरुते । विंशकाचतोन्व्या ।

पंचर्चाद्यो विंशते स्युर्नचोद्धम । ततः परांत्ये । अष्ट कुर्याद्द्वितीये ।  
अष्टोनं तस्माच्छताद्धे तृतीये । द्वयून तुरीयः । विंशदेकाधिकोत्तयः ।

विंशानिमिताः पडर्चेषु कार्यास्तिष्ठो दशाष्टौ च दशपंचर्चा चतु-  
र्दशांत्या अनुवाकशश्च संख्यां विद्यादाधिकां निमित्तात् ।

सप्त । नव । एकविंशतिः । अथ कुर्याद्द्वादश । अपराः पंच । पट्ट ।  
सप्त चापि बोध्याः । सप्तदशांत्याः पडर्चवच्च ।

आद्यात्पर एकादशहीनः षष्टिः । द्विपद्भिराद्य । तिसृभिस्तृतीयः ।  
षष्ठे तु नवैका च । परा च षष्ठेनव ।

अपर एक वृषः ( अनुवाक ४ ) त्र्यशीतिः ॥१४॥

प्रथम, दशम, पंचमाः स षष्टिस्त्रिंशत्का । द्वयधिकौ, अपचिद्,  
द्वितीयौ । चतसृभिरधिकस्तु सप्तमः स्यात् । एकत्रिंशक मष्टमं वदन्ति ।  
अष्टत्रिंशो द्वादशः । प्राक् तस्मात्सप्तत्रिंशः । यः परः स चतुःषष्टिः ।  
तृतीयचतुर्यौ त्रयस्त्रिंशत्कौ ।

१. अ, व, ततो परान्ते । ष्ठ, ततो परान्तं अथवा परान्ते ॥ २. अ, व, अष्टौन ॥

३. ष्ठ. तु ॥ ४. ष्ठ, एकत्रिंशतिः । ष्ठिडने ने स्वयं लिखा था, 'यह अस्फुट है' ।  
वस्तुतः लेखक-भ्रम से वृष ही त्रिप ( ष्टिः ) हुआ है ॥ ५. अ, व, द्वादश  
प्रोक्तः । अगला पद 'प्राक्' जिसके आगे 'त' है, 'प्रोक्तः' बन गया है । ष्ठिडने का  
उपर्युक्त पाठ बहुत ठीक है ।

तत एकर्चानां कीर्त्तयिष्यामि संख्याम् । अष्टावाधे । द्वे द्वितीये  
तु विद्यात् । अष्टौ तिम्रध्याय योष्यास्तृतीये । ङौ पंचर्चां सन्निविष्टौ  
चतुर्थे । पंचैवां<sup>१</sup> द्विंशतेः पंचमे स्युः । द्विरेकविंशतिः षष्टिः । त्रिंश-  
देका च सप्तमाः । चतुर्विंशकविंशश्चाम् । परो द्वात्रिंशक उच्यते ।

एकविंशकमिहाद्य मुच्यते । सूक्तश्च गणना प्रवर्त्तते । आद्य-  
सहितम् । स सप्तमं वृद्धिं विंशतिकं मृचोऽष्ट चापराः ॥१५॥

विराड्भवे तु पद् पर्याया, यो विद्यादिति पद् स्मृता ।

प्रजापतिस्त्वैकः स्यात्, त्रयस्तस्योदनो भवेत् ।

दृतीयमाहुरिह पंचविशकं, कामसूक्तं वरणां तथैव च ।

पंचमे, नवदशे च, विंशतेः; द्वे ऋचौ, नवदशापरे च ।

प्राणाय, ब्रह्मचारी च; यो ते, इन्द्रस्य प्रथमं, कुत ।

ये बाहवः, तृतीयं तु, सप्तपञ्चविशकानि तु ।

उच्छिष्टेऽघायतामन्वो, विंशतिः सप्त चापराः ।

इन्द्रो मन्थतु, भाहस्रो, दिवश्चतुस्तर ।

द्वे, तिस्रो, विंशति पंच; चतुर्दशश्चतुर्दश ।

चतस्रं, रामानुपूर्वेण, शेषाः स्युर्विंशतैः पराः ।

अष्टादश, आ नय, अग्निं ब्रूमके तिस्रः, यन्मन्वुः, इत्यत्र चतुर्दश च ।

एकादशैव उपमिताम्, इति स्युः, तथैव रौद्रेपि परास्तु विंशतेः ॥१६॥

भौमस्त्रयधिका षष्टिः, स्वर्गः षष्टिः, नडस्तु पंचोना, सप्तभिस्त्वा तु यशाः,  
ब्रह्मगवीः सप्त पर्यायाः । षष्टिः, यद्बलवारिशत् यद्बिंशति यद् पर्यायाः । एत-  
त्काञ्चे रोहितानामतोन्यत् ।



आद्यः सौर्यश्चतुःपष्टिः पंचसप्ततिरुत्तरः ।  
 मात्याद्यः सप्त पर्याया एकादश परो भवेत् ।  
 प्राजापत्यो ह चतुष्कः पंचपर्याय उत्तरः ।  
 एकपष्टिश्च पष्टिश्च सप्ततिस्त्र्यधिकात् परः ।  
 एकोन नवतिथैर्व यमेषु विहिता ष्टचः ।  
 इत्येतत्समनुक्रान्त मृचस्त्रिंशद्विंशसहिः ॥१७॥

इति चतुर्थः पटलः समाप्तः ।



आचार्यसंहिताया तु पर्यायाणामतः परम् ।  
 अरसानसख्या वक्ष्यामि यावतीयत्र मिश्रिताः ।  
 त्रयोदश दशाष्टौ च ततः षोडश षोडश ।  
 विराड्द्वयायां चतुष्कस्तु पट् पर्यायास्तु निश्चिताः । यो विद्यायाम् ।  
 दश सप्त च पूर्वः स्याद् द्वितीय स्यात्त्रयोदश ।  
 तृतीयो नवको दृष्ट तस्माद् द्वौ दशकौ परौ ।  
 षष्ठ तु चतुर्दशमाहु पञ्चविंशो ब्राह्मणयोग्य ।  
 एकविंशद् भवेत्पूर्वं तस्माद् द्वाप्तति पर ।  
 तृतीय सप्तको दृष्टो बृहस्पतिशिरस्यपि ।  
 वचनानि च पट् पच षोडशकादशाष्ट च ।  
 ब्रह्मगव्यां पंचदश तस्माद् द्वादशक पर ॥१८॥ रोहित्  
 चतुर्थस्यावमानानि वक्ष्यमाणानि तानि शृणु ।  
 त्रयोदशाष्टौ च तत पर सप्त सप्त दश पट् च बोध्या ।  
 षष्ठ पंचक उच्यते ।  
 आर्यप्राजापत्योरेव सख्यां वक्ष्यामि तानि शृणु ।  
 अष्टौ द्व्यूना ततस्त्रिंश देकादश परं भवेत् ।  
 द्व्यूना तु विंशतिस्तुर्य पंचम षोडश स्मृतः ।  
 विंशति पट् च षष्ठश्च सप्तम पचक उच्यते ।  
 एकादशकात्रयोत्र बोध्या द्वावाद्यावय निश्चितौ त्रिकौ तौ ।  
 षष्ठ तु चतुर्दशैत्र विंशद् दश दशमं नवमस्तु सप्तक स्यात् ।  
 चत्वारि विंशतिश्चैव मत्तमो वचनानि तु ।  
 अष्टमं नवकं विंशत् पंचको दशमात्पर ।  
 प्राजापत्यस्य सर्वस्य परमस्य पुन शृणु ।  
 त्रयोदशाद्यं विजानीयाद् द्वौ षट्को सप्तम पर ।  
 आद्य दर्शनं हेकादशकं तस्माच्च परं द्व्यधिकं विहितम् ।  
 एकादश वै त्रिगुणान्यपर ।  
 चत्वारि वै वचनानि परश्चत्वारि वै वचनानि पर इति ॥१९॥

इति पंचपटलिका समाप्ता ।



धोश्म

## भावानुवाद ।

प्रथम पटल ।

उक्तानुक्त ( कहे हुए के न कहने ) के जिस न्याय=नियम को परिवन्धव ( ऋषि ) बोला, तथा पर्यायों और ऋचाओं के ( नियम को भी ) उसे हम यथाक्रम कहेंगे ।

बहुत से अव्यवेत=संयुक्त=मिले हुए ( मन्त्रों के ) जहाँ अनेक सदृश पद ( श्रवण ) तो उन में जो आदिष्ट=कहा हुआ ( पद ) हो, वही उक्तानुक्त कहाता है ।

उस ( उक्तानुक्त ) के उत्पन्न=प्रादुर्भूत होने पर, संशब्द= आदिष्ट अर्थात् सांकेतिक पद को प्रकरण के अन्त्य में ( रखे ) । अन्यत्र उस के आरम्भ और समाप्ति का एक पद कहे ।

अन्त्य=अन्त बाँधे ( पद ) को आरम्भण जाने ( पकड़ ले ) तथा आद्य को छोड़ दे । कां० २ सू० १६ में 'अग्ने यत् ते' पांच मन्त्रों के आरम्भ में आता है । वहाँ प्रथम और अन्त का मन्त्र छोड़ के, शेष, २, ३, ४ मन्त्रों में 'ते' पद को पकड़ कर 'अग्ने यत्' छोड़ देना चाहिये अर्थात् मन्त्र २ से ते हरे । इत्यादि ही लिखना चाहिये । वैसे ही कां० ८ सू० १० के पर्याय २ में पूर्व ८ । १०, १ में आये 'सोदकामत्' पद को न लिख कर 'सान्तरिक्षे' से मन्त्रपाठ लिखना चाहिये । यही यहाँ निदर्शन=उदाहरण है ।

पुनः, जहाँ से आगे आदि वा अन्त के ( पदों की ) निवृत्ति होवे, उसी से वहाँ उन के सन्निहित पद कहने चाहियें । 'ते चहुः'

५। ३१। १ सूक्तसप्तमी में तथा 'विशोघायुः' ५। १०। १ यहाँ उदाहरण है ।

विशेष विचार । सूक्तसप्तमी से सम्भवतः कां० ४ का अभि-  
प्राय है । वहीं सात २ ऋचाओं के सूक्त हैं । वहाँ भी 'ते चहुः'  
४। १७। ४ है । दोनों काण्डों के मन्त्रों के कई पद सहस्र हैं । यह  
नियम पांचवें काण्ड में अधिक चरितार्थ होता है, अतः वहाँ का  
प्रमाण मूल के टिप्पण में धरा गया है ॥ १ ॥

'आकार' जहाँ पर आद्य हं, वहाँ भी दो पद रहे । 'सा पितृन्'  
प्रभृति पर्यायों में 'पहीति' = आ + इहि ८। १०। ४, ५ यहाँ  
उदाहरण है ।

अवसान का एक देश जो अवसानता = अन्तना को प्राप्त  
होवे, वहाँ भी क्रमपाठ की समाप्ति के लिये दो पद रहे । 'यो ३ जम =  
यः + अजम' ६। ५। २२ 'स्कम्मं तम् १०। ७। ४ यह उदाहरण जाने।  
अर्थात् इन दो २ पदों को रख के शेष पदों की निवृत्ति करे ।

जो अवसान हो कर पुनः अवयव हो जावे अर्थात् अवसान  
का भाग धन जावे, उन के अवसानों को अन्त्यो के समान उत्सर्जन  
करे । 'धीरत् क्षेत्रियनाशनि' २। ८। २ यहाँ उदाहरण है । जो  
तुल्य अवसान है, यह सारा ही छोड़ दे । 'तमिन्द्रः प्रत्यमुधत्'  
१०। ८। ७ इस में सारा पहला अवसान और 'धं कुर्वन्म' १। १। ३२  
यहाँ तुल्य मध्यावसान सारा २ छोड़ दे ।

पूर्वोक्त विधि में कहीं हुई सव ( ऋचाओं में ) यदि जाने तो  
उन सव के सहस्र अवसानों को ऐसे ही छोड़ दे । 'यथा घाँघ'  
२। १५। १ 'शैरमफ' २। २४। १ 'यो धं नैदाघं नाम' ६। ५। ६, ३१  
'यथा यानो घनस्पतीन् १०। ५। १३ यहाँ उदाहरण है ॥ २ ॥

नामा अवसानों वाला हो के जो पुनः एक ( अवसान ) में हो जावे, तो उसी से समाप्ति करने चाहिये और एक में भी उसे पढ़ें।

त्रि० वि० । 'अ', 'व' में चकार और घकार का कोई भेद प्रतीत नहीं होता । 'चापि=वापि' बन जाता है । अतः इस सम्बन्ध में निश्चय से कुछ कहा नहीं जा सकता ।

इस का उदाहरण 'ममिमाम्' १८ । २ । ४४ है । वहाँ 'यथा परं न मासाते । शते शरत्सु नो पुरा ।' यह दो अवसान हैं । अगले मन्त्र में ये पद एक अवसान में आते हैं । से प्रथम मन्त्र से ही समाप्ति करे । ऐसे ही 'उत्तरस्याम्' ४ । १३ । ८ जानें । यह उदाहरण इतना स्पष्ट नहीं ।

पर्यायों में अवसानों का ऋचायों के समान विधि हो । जैसे 'सर्वदा' १० । ६ । १२ 'क्षिप्रम्' १२ । ६ । १ यह उदाहरण है । 'अ', 'व' में जो 'घेपरत' पाठ है वह सन्दिग्ध है ।

अवसानों के जो मण्ड पृथक् २ सम्बन्धारे वाले हैं, उन में अर्थ विधिपूर्वक जानने चाहिये । 'सोऽक्रामत्' ८ । १० । २ निदर्शन है । यहाँ मण्डों में समान पद दूर होने से पता नहीं लगता था, अतः ऐसा कहा जाय । इस भिन्न प्रकार को विहटने ने स्वयं जान कर यह लिखा है —

"Sometimes the case is a little more intricate Thus in viii 10, the initial words सोऽक्रामत् are written only in verses 2 and 29, although they are really wanting in verses 9-17, *panyaya* II (verses 8-17) being in this respect treated as if all one verse with subdivisions." (p. CXX.)

जो नियम अव्ययों=सयुक्तों में देखा गया है, वहीं असयुक्तों में भी दिखाई देता है। वह तुल्य पृथक् पृथक् करे। और उम में दइ एक धार ही पड़े। 'यदेनमाह द्वात्य' १५। ११। ४ चौथे मन्त्र में उदाहरण है। यहाँ सातवें और नवमें मन्त्र में यह पाठ नहीं है, दशम में है; अतः यह नियम कहना पड़ा।

इस से आगे कहे हुए नियमानुसार उत्सर्जन करे। अन्त में 'सी से कीर्ति करे। 'ते वश' निर्देशन है। इस उदाहरण का पता नहीं लगा ॥ ३ ॥

यदि पुनः ऋचापं तुल्य=सदृश हों, तो जहाँ तक उन का विशेषण हो, वहाँ तक शास्त्र-विधि अनुकूल उन्हें पृथक् करे।

उस से आगे संख्या का प्रयोग करे। 'वा शशाप' १। २८। ३ तथा ४। १७। ३ यहाँ उदाहरण है। यह मन्त्र दो स्थलों में आया है। उत्तर स्थल में मन्त्र-प्रतीक देकर "एका" आदि संख्या का प्रयोग करे। 'सं वो मनांसि' ३। ८। ५ तथा ६। ६४। १ में आया है। वहाँ भी ऐसे ही करे।

जहाँ संदेह हो कि एक ही मन्त्र द्वारा आया है या दो साथ २ वाले मन्त्र हैं तो 'पूर्वा' का विशेषण देवे। 'वारते धाना' १८। ३। ६६ तथा १८। ४। २६ में आया है। दोनों स्थलों में इस से पूर्व मन्त्र भी सदृश है।

जहाँ दो मन्त्र एकत्र आयें और जहाँ उनके आगे दो मन्त्रों में सदृश प्रतीक हो, तो कौन सा अभिप्रेत है, यह संदेह मिटाने के लिये उत्तर स्थल में आदि में पाठ करे। 'पूर्वापरं' ७। ८। १ तथा १३। २। ११ और १४। १। २३ में प्रतीक है। इस के आगे 'नवो नवः' ७। ८। २ और १४। १। २४ में आया है। यहाँ १३। २। १ की दाया दूरीकरणार्थ यह नियम है।

एक, दो, तीन ऋचाएं जहां एकत्र आवें और वैसे ही आगे भी आवें, तो उत्तर स्थलों में 'एका' 'द्वे' 'तिस्रा' यह लिख दे । घर्ग आदि में भी वैसा ही करे । शेष अर्थ किसी हस्तलिखित संहिता को न देखने से पूर्ण स्फुट नहीं ।

प्रथम पटल समाप्त हुआ ।

द्वितीय पटल ।

अथ छन्द=अथर्वसंहिता में भाव=कारण, सूक्तादि की स्थिति कहेंगे । तीन प्रकार वाले सूक्तवर्णक, ऋक्यपर्यायिक और यजुषों के अवसान को जानने के लिये व्याख्यान करेंगे । पहले चार कारणों में पांच सूक्तों के अनुवाक हैं, छः अनुवाकों को छोड़ कर । अर्थात् कारण १ अ० १, ५, ६ । कां० २ अ० ३, ४ । कां० ३ अ० ६ ।

इन छ अनुवाकों को छोड़ कर शेष सब पांच सूक्तों वाले अनुवाक हैं । महत् अर्थात् पंचम कारण में एक अर्थात् अनुवाक ४ को छोड़ कर शेष पांच सूक्तों वाले अनुवाक हैं । तृचों अर्थात् तीन ऋचा वाले छठे कारण में प्रति अनुवाक दश (१०) सूक्त का है । पर पांच आपवादिक अनुवाक हैं । ३, ७, ११, १२ और १३ । इन में प्रथम चारों में ११ सूक्त और अन्तिम में १८ सूक्त हैं । एक ऋचा वाले सप्तम कारण में एक २ ऋचा वाला सूक्त है ।

चुद्रों अर्थात् ८ वें से ११ वें कारण तक दो दो सूक्त वाले अनुवाक हैं । १२, १३, १४ कांडों में प्रत्येक अनुवाक एक एक सूक्त वाला है ।

१७ वें अर्थात् शेष कारण में एक सूक्त के एक ही अनुवाक का कारण है । यह पूर्वोक्त क्रम पर्यायों को छोड़ के है । 'आत्य

और 'शाजापत्य' अर्थात् १५ तथा १६ काण्ड का पृथगुत्तर कहा है। सूक्तावस्था यथा काण्ड (आगे कही हुई) है। वहां न प्रत्युपाय और न दुर्भाग्य है। यह पाठ अस्पष्ट है। अपवाद अधिक हैं। महत् अर्थात् पञ्चम काण्ड में काण्ड-समाप्य आठ ऋचा वाले सूक्तों का है ॥ ५ ॥

आगे प्रतीक धर के यह बताया है कि जो अपवाद पूर्वोक्त प्रसङ्ग में बताए गये थे, उन में किस काण्ड के किस अनुवाक में कितने सूक्त हैं। आगे एकत्र=सतत काण्ड में प्रत्येक अनुवाक कितने सूक्तों का है यह कहा है। अर्थ बहुत सरल होने से नहीं कहा।

१, २, ३, ४, ५, ६ तथा ७ काण्ड में प्रतिसूक्त क्रमशः ४, ५, ६, ७, ८, ३ तथा १ ऋचा वाले हैं। उन के अपवाद ऋण्ड सात से आरम्भ होते हैं। वे प्रतीक धर के सब गिना दिये गये हैं। सो सारे मूल में देलने चाहिये। 'अ', 'ब' दोनों मूल पुस्तकों में ऋण्ड ८ का अङ्क इस पटल में दो बार आया है। हम ने इसे वैसा ही दे दिया था। पीछे विचार हुआ कि यह लेखक-प्रमाद से ही हुआ है। सो पाठकों को इसे शुद्ध कर लेना चाहिये। इस प्रकार पांच पटलों में सारे बीस ऋण्ड हो जायेंगे। इस संशोधित गणनानुसार १।१० वाले सातवें काण्ड के अपवादों में 'आ सुस्रसः' (७६) छः ऋचा वाला सूक्त भूल से रह गया है। इस बात का ध्यान शङ्करपाण्डुरङ्ग ने भी अपने आलोचनात्मक विशापन पृ० १८ पर दिखाया है।

मुम्बई संस्करण में सूक्त ७६ को चार वा दो ऋचा वाले दो सूक्तों में विभक्त किया है, परन्तु पटलिका में इस के लिये कोई प्रमाण नहीं।

द्वितीय पटल समाप्त हुआ ।



तृतीय पटल ।

षण्ड दश का अन्तिम श्लोक अशुद्ध प्रतीत होता है । किसी लिखित ग्रन्थ के आधार के बिना इस का यथार्थ पाठ नहीं ढूँढा जा सकता ।

षण्ड ११ से एक अवसान, तीन अवसान, चार अवसान और पांच अवसानों वाली ऋचाओं की प्रतीकें धरी हुई हैं । फरे मन्त्र वर्लिन संस्करण में दो अवसानों वाले हैं । मुम्बई संस्करण के सम्पादक ने उन्हें प्रायः पञ्चपटलिकानुसार कर दिया है ।

तृतीय पटल समाप्त हुआ ।

चतुर्थ पटल ।

(१) आय ( काण्ड ) के प्रथम ( अनुवाक ) में ऋचाएं ६ ( अधेरु है २० से, पेसा ) जाने । ५+२० अगले में । पांचवें में ८+२० । ११+२० अगले में है । बीस से ( आदर्श ) करते हैं । बीस इन से दूसरों में ।

प्रथम काण्ड में छः अनुवाक हैं । उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी । २०+२५+२०+२०+२८+३१=१५३ । प्रथम काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श चार है ।

(२) पांच ऋचा वालों में से आय अनुवाक ( में ) हैं बीस से नौ ऊपर अर्थात् २६ । ऐसे ही अन्त्य से पूर्व में । ८+२० करे दूसरे में । आठ कम, उस सौ के अर्ध से तीसरे में ( अर्थात् ५०—८=४२ ) । दो कम पचास से चतुर्थ । तीस से एक अधिक अन्त का ।

दूसरे काण्ड में छः अनुवाक हैं । उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी । २६+२८+४२+४८+२६+३१=२०७ । दूसरे काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श पांच है ।

(३) तीस का निमित्त ( आदर्श ) छः ऋचा वाले ( सूक्तोंमें ) करना चाहिये । तीन, दश, आठ, दश और पांच और चौदह अन्त वाले में । ( इस प्रकार ) अनुवाक के पीछे अनुवाक में यथान्त संख्या जाने, अधिक निमित्त से ।

तीसरे काण्ड में छः अनुवाक हैं । उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी ।  $३३+४०+३८+४०+३५+४४=२३०$  । तीसरे काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श छः है ।

(४) सात, नौ, इकतीस, तब करे बारह । आगे पांच, छः और सात भी जानने चाहियें । सत्तरह वाला अन्त का । छः ऋचा वाले के समान ।

चौथे काण्ड में आठ अनुवाक हैं । उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी ।  $३७+३६+५१+४२+३५+३६+३७+४७=३२४$  । चौथे काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श सात है ।

(५) प्रथम से परला ग्यारह कम साठ । दो छः अर्थात् बारह कम साठ वाला प्रथम । तीन कम साठ वाला तीसरा । छठे में नौ और एक और साठ । परले में साठ और नौ । उस से भी परले 'एक वृषोसि' वाले में तीन और अस्सी ।

पांचवें काण्ड में छः अनुवाक हैं । उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी ।  $४८+४६+५७+८३+६६+७०=३७०$  । पांचवें काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श आठ है ।

(६) प्रथम, दशम और पश्चम अनुवाकों में, यह छठा तीस वाला । दो अधिक तीस से 'अपचिद्' अर्थात् नवम अनुवाक में; ( और इतनी ही ) दूम्बरे अनुवाक में । चार अधिक तीस से सातवां है । इकतीस वाले आठवें को कहते हैं । अड़तीस वाला

चारहवां । उस से पहला सैंतीस वाला । जो अगला यह चौसठ वाला । तीसरा और चौथा तैंतीस वाले ।

छठे काण्ड में तेरह अनुवाक हैं । उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी ।  $३०+३२+३३+३३+३०+३०+३४+३१+३२+३०+३७+३८+६४=४५४$  । छठे काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श तीन हैं । इन्हीं सूक्तों को तृच कहते हैं ।

ग्हिटने ने छठे अनुवाक के सम्बन्ध में जो पाठ सर्वानुक्रमणी से उद्धृत किया है, वह उसके टिप्पण सहित यह है—'षष्ठो त्रिंशत्कौ (पदो, त्रिंशत्कौ?)

(७) इस से आगे एक ऋचा वाले सूक्तों की कीर्तन करूंगा संख्या । आठ ( बीस से अधिक ) प्रथम ( अनुवाक ) में । दो दूसरे में जाने । आठ और तीन जानने चाहिये तीसरे में । दो चार पांच अर्थात् दश ऋचाएं सन्निविष्ट हैं चौथे में । पांच अधिक बीस से पांचवें में हैं । दो बार इक्कीस छठे में । इकत्तीस सातवें में । चौबीस, इक्कीस से । अगला बत्तीस वाला कहा जाता है ।

सातवें काण्ड में दश अनुवाक हैं । उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी ।  $२८+२२+३१+३०+२५+४२+३१+२४+२१+३२=२८६$  । सातवें काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श एक है ।

प्रथम सात काण्डों में कुल ऋचा-संख्या- $१५३+२०७+२३०+३२४+३७६+४५४+२८६=२०३०$  अर्थात् दो सहस्र तीस मन्त्र ।

इस काण्ड की समाप्ति यहाँ होनी चाहिये क्योंकि आगे नई गणना आरम्भ होती है ।

इक्कीस ऋचा वाला ( आठवें काण्ड का ) प्रथम ( सूक्त ) कहा जाता है । ( आगे ) गणना सूक्त-क्रम से प्रवृत्त होती है । आद्य के साथ । वह भातवां सूक्त अठारहवां ऋचा वाला है ॥ १५ ॥

(अष्टम काण्ड के नवम सूक्त से आगे) 'विराड् वा' छः पर्याय हैं। (नवम काण्ड के पांचवें सूक्त से आगे) 'यो विधात्' छः पर्याय हैं। (इन से अगला ही अर्थात् तृतीय अनुशासक के आगे) 'प्रजापतिः' वाला एक पर्याय है। (इन से परे एकादश काण्ड के दूसरे सूक्त से आगे) 'तस्यौदनस्य' वाले तीन पर्याय हैं।

(कां० ८ का) चतुर्थ सूक्त यहां पच्चीस श्रुचा वाला कहा जाता है। (इतनी श्रुचा वाला ही) कामसूक्त (कां० ६ सू० २) तथा 'अयं मे वरगो' (१०।३) है।

अ, व और व्ह में "वरगो" पाठ है। बिट्टने ने 'वरगो' पाठ रखने की सम्मति दी है।

(काण्ड आठ के) पांचवें, और उन्नीसवें (अर्थात् काण्ड नवम के नवम सूक्त) में बारहस श्रुचाएं हैं। और उन्नीसवें से पहले (अर्थात् कां० ६ सू० ८) में भी (बारहस ही)।

'प्राणाय' ११।४ और 'ब्रह्मचारी' ११।५, 'यौ ते' ८।६, 'इन्द्रस्य प्रथमः' १०।४, 'हुतः' ८।६, 'ये बाहवः' ११।६ तथा ८।३ ये सात छत्रीस श्रुचा वाले हैं।

'उच्छिष्टे' ११।७, 'अघायतम' १०।६ और 'अन्त्य का' ११।१० सत्ताईस श्रुचा वाले हैं। 'इन्द्रो मन्यतु' ८।८, 'साहस्रः' ६।४, 'दिवः' ६।१ चार अधिक (धीम से अर्थात् चौबीस) श्रुचा वाले हैं।

दो (अश्विष तीरुले) १०।१, तीन (नतीस) १०।२, बीस (नतीस) १०।५, पांच (नतीस) १०।६, चौदह (नतीस) १०।७, चौदह (नतीस), १०।८, चार (नतीस) १०।१०, सात (नतीस) आनुपूर्वी से, शेष हैं तीस से परे ११।१।

अठारह (नतीस) 'प्रम नय' ६।५, 'अग्नि वृमः' ११।६,

तीन (+बीस) और 'यन्मन्युः,' ११।८ यहां चौदह (+बीस) धाजा है। ग्यारह (+बीस) उपमिताम '३।३ है। वैसे ही इकतीस धाजा रुद्र सूक्त ११।२, यहां संख्या धीस को आदर्श मान के उस से ऊपर कही है ॥ १६ ॥

पहले विभाग में गणना अनुवाक-क्रम से थी। इस विभाग में सूक्त-क्रम से हो गई है। यहां दूसरे सूक्त के सम्बन्ध में 'आद्य सहितम्' लिखा है। इसका अर्थ इतना स्पष्ट नहीं। इस गणना में पर्याय तो गिन दिये गये हैं, परन्तु उन के अवसानों की संख्या अन्तिम पटल में दी गई है, अतः वह वहीं गिनी जायगी।

पूर्वोक्त ८-११ काण्ड तक की श्रुचा-गणना क्रमशः यह यनी।

सू०	कां० ८	कां० ९	कां० १०	कां० ११
१	२१	२४	३२	३७
२	२८	२५	३३	३१
३	२६	३१	२५	पर्याय
४	२५	२४	२६	२६
५	२२	३८	५०	२६
६	२६	पर्याय	३५	२३
७	२८	"	४४	२७
८	२४	२२	४४	३४
९	२६	२२	२७	२६
१०	पर्याय	२८	६४	२७
	२२८	२१४	३५०	२५७

१. यह गणना मूल में नहीं मिलती। प्रतीत होता है भूल में रह गई है।

भौमः=भूमि देवता वाला १२।१ तिरसठ वाला । स्वर्गः १२।३ साठ वाला । नडः १२।२ पांच कम अर्थात् पचपन वाला । वश (देवतात्मक) सात कम अर्थात् तरेपन वाला । ब्रह्मगवी देवता वाले सात पर्याय ( आगे ) ।

साठ १३।१, छयालीस १३।२, छर्म्यास १३।३, आगे छः पर्याय । यह तेरहवां काण्ड रं हित देवता वाला है ।

( कां० १४ का ) प्रथम ( अनुवाक=सूक्त ) सूर्य देवता वाला चौंसठ वाला । पचहत्तर वाला अगला ।

( कां० १५ ) ब्राह्म्य काण्ड कहाता है । उस के आरम्भ में सात पर्याय हैं, और उनसे आगे ग्यारह । इस में दो अनुवाक हैं । उन्हीं के अन्तर्गत ये दो पर्याय-समूह हैं ।

भ्राजापत्य ( कां० १६ ) में भी दो अनुवाक हैं । उन में चार और पांच पर्याय क्रमशः हैं ।

इकासठ, साठ, तिहत्तर, नवासी, क्रमशः ऋचा-संख्या यम अर्थात् काण्ड अठारह के चार अनुवाकों में है ।

यहां तक टीक अनुक्रम कहा गया है । तीस ऋचाएं 'विपासहिम्' प्रतीक वाले रुतारहवें काण्ड में हैं । इसमें एक ही अनुवाक हैं ।

सू०कां० १२	कां० १३	कां० १४	कां० १८	कां० १७
१ ६३	६०	६४	६१	३७
२ ५५	४६	७५	६०	
३ ६०	२६		७३	
४ ५३	पर्याय		८६	
५ पर्याय				
२३१	१३२	१३६	२८३	३७

चतुर्थ पटल समाप्त हुआ ।

पञ्चम पटल ।

इस से आगे आचार्यसंहिता में जो पर्यायों के अवसानों की काण्डों में मिश्रित संख्या है, उसे कहूंगा ।

तेरह, दश, आठ, तत्पश्चात् सोलह, सोलह, 'धिराद् घा' वाले में, तब चार, यहां छ पर्याय निश्चित हैं ।

अष्टम काण्ड में अवसानों की कुल संख्या— $१३+१०+८+१६+१६+४=६७$  ।

नवम काण्ड में 'यो विद्यात्' के पर्याय में अवसान-संख्या-पहला सत्तरह वाला है । दूसरा है तेरह वाला । तीसरा नौ वाला देखा गया । उस के आगे दो दश २ वाले हैं । छठा चौदह वाला है । अगला ब्रह्म की गौ वाला छप्पीस वाला है ।

नवम काण्ड में अवसानों की कुल संख्या—

$१७+१३+६+१०+१०+१४=७३$  ।  $७३+२६=९९$  ।

(काण्ड दश में कोई पर्याय नहीं । काण्ड ग्यारह में सूक्त दो से आगे एक पर्याय-समूह है । उस में) इकत्तीस वाला पहला है । उस से आगे बहतर वाला है । तीसरा सात वाला 'बृहस्पति शिरः' वाले पर्यायों में है ।

एकादश काण्ड के अवसानों की कुल संख्या— $३१+७२+७=११०$  ।

दूसरे पर्याय पर विह्वलने का नोट (पृ० ६२८) पर देखो । उस के अनुसार वर्तित संस्कार्य में यह दूसरा पर्याय केवल अठारह गणों या दशकों में ही विभक्त है ।

पटलिका के दूसरे विभाग की कुल संख्या —

श्रुचा संख्या— $२२६+२१४+३४०+२५७=१०४७$  ।

अवसान संख्या— $६७+६६+११०=२७६$  ।

दोनों की मिली हुई संख्या— $१०४७+२७६=१३२३$  ।

ब्रह्मगवी देवतात्मक ३२५ के पर्यायों में वचन हैं,—छः, पांच सोलह, ग्यारह और आठ । उस से आगे पन्द्रह और फिर बारह ।

बारहवें फाण्ड के कुल वचनों की संख्या— $६+५+१६+११+८+१४+१२=७३$  ।

रोहित अर्धात्त काण्ड तेरह के चौथे अनुवाक के जो कहे जाने वाले अवसान हैं, उन्हें सुनों । तेरह और आठ । उन से आगे सात, सतरह, छः । छठा पर्याय पांच वाला कहा जाता है ।

तेरहवें काण्ड के पर्यायों के अवसानों की कुल संख्या—  
 $१३+८+७+१७+६+४=५६$  ।

चौदहवें काण्ड में कोई पर्याय नहीं ।

अब 'द्रात्य' और 'प्राजापत्य' अर्धात्त काण्ड १५, १६ के अवसानों की संख्या कहूंगा, उन (अवसानों) का सुनों । आठ, आगे दो कम तांस, अगला ग्यारह वाला है । चौथा दो कम बीस वाला, पंचम सोलह वाला है । छठा छब्बीस वाला, सातवां पांच वाला कहाला है । दूसरे अनुवाक के तीन पर्याय (३, ४, ५) ग्यारह वचनों वाले जानों । निश्चय ही दो आदि के तीन तीन वचनों वाले हैं । छठे को चौदह वाला जानें । दशम दश वाला, नवम सात वाला है । सातवें में चौबीस वचन हैं । आठवां नौ वाला जानें । दशम से अगला ग्यारहवां पांच वाला है ।

पन्द्रहवें काण्ड के पर्यायों के अवसानों की संख्या—

प्रथमानुवाक में— $८+२८+११+१८+१६+२६+५=११२$  ।



द्वितीयानुवाक में— $३+३+११+११+११+१४+२४+६+७$   
 $+१०+५=१०८$  । कुल संख्या— $११२+१०८=२२०$  ।

प्राजापत्य काण्ड के प्रथमानुवाक \* और फिर द्वितीयानुवाक के सम्यन्ध में सुनों । पहले तेरह वाला जानें, दूसरा और तीसरा छः छः वाले, सात वाला अगला चौथा । (यहां प्रथमानुवाक समाप्त हुआ) । पहला दश वाला, अगला ग्यारह वाला, उस से अगला तेरह वाला । अगला तीन गुणा ग्यारह अर्थात् तैंतीस वाला । अगले में चार वचन हैं । दो बार पाठ ग्रन्थ समाप्त्यर्थ है ॥ १६ ॥

सोलहवें काण्ड के पर्यायों के अवसानों की संख्या—  
 प्रथमानुवाक में— $१३+६+६+७=३२$  ।

द्वितीयानुवाक में— $१०+११+१३+३३+४=७१$  ।

कुल संख्या— $३२+७१=१०३$  ।

पटलिका के तीसरे विभाग की ऋचा संख्या— $२३१+१३२$   
 $+१३६+२८३+३७=८२२$  ।

अवसान-संख्या— $७३+५६+२२०+१०३=४५२$  ।

दोनों की मिली हुई संख्या— $८२२+४५२=१२७४$  ।

पञ्चपटलिकानुसार अठारह कण्डों के मन्त्रों और वचनों की कुल संख्या— $२०३०+१३२३+१२७४=४६२७$  ।

पञ्चम पटल समाप्त हुआ ।

पञ्चपटलिका का भावानुवाद समाप्त हुआ ।

पटलिकान्तर्गत मन्त्र-प्रतीकानुक्रमणी ।

अङ्को से अष्ट अभिप्रेत हैं ।

आक्षितिम्	१२	अन्तरिक्षेण	१३
अक्षीम्यां ते	७	अन्यघ नः	१०
अग्नये कव्यवाहनाय	१२	अपचिताम्	१०
अग्नाविष्णु महि	१०	अपचितः प्रपतत्	६
अग्निवासाः	१२	अप नः शोशुक्षत्	७
अग्निस्तफमनम्	८	अपि वृद्ध्य	१०
अग्ने अक्रव्यात्	१२	अपेह्यरिः	१३
अग्ने इन्द्रश्च	१०	अपो दिव्याः	१०
अग्नेर्भागस्य	१३	अप्सु ते राजन्	१०
अद्गादद्गात्	१३	अभित्या	१३
अजो ह्यग्नेः	७	अभित्यम्	१०
अनि धन्वानि	१०	अमीवर्चैन	६.७
अति मात्रम्	८	अभ्यर्चत्	१०
अत्रैनानिन्द्र	१३	अमुत्र भूयात्	१०
अदितिर्घोः	१०	अयं ते योगिः	७
अदो यदवधावति	७	अयं लोकः	१३
अनङ्गवान् दाधार	७	अयं सहस्रम्	१०
अनाधृष्यः	१०	अयं सहस्रमा	१२
अनु सूर्यम्	६	अर्धमर्धेन	१३
अन्तरा घाम्	१३	अर्धुदिर्नाम्	१३
अन्तरिक्षं धेनुः	१३	अवैरहत्याय	१३
अन्तर्धिः	१२	अश्म घर्म मे	७

अहो रात्रैः	१३	इयं वीर्य	६
अहं रुद्रेभिः	७	इदं ध्रुवाम	७
आ त्वा अग्ने	१३	ईशानां त्वा	७
आ त्वा गन्	७	ईशां वो मरुतः	१३
आ नो अग्ने	७	ईशां वो वेदराज्यम्	१३
आ नो भर	७	उच्चैर्घोषः	८
आ पश्यति	७	उत्तरं द्विपतः	१३
आषयः	६	उत्तरस्याम्	३
आ मा पुष्टे च	१३	उत्तिष्ठताद्य	१०
आ यमोगन्	७	उतो अस्य यन्धुरुद्	७
आरे अभूत	१३	उद्गाद्यम्	१३
आयतस्ते	८	उदपूरसि	१२
इतो जय	१३	उदस्य इयाषः	१०
इर्धं खनामि	१०	उदायुरुद्	१३
इदमुप्राय	१०	उद्धर्षन्ताम्	१३
इदं यत् काण्ड-	१०	उद्धर्षिणाम्	१३
इदं सु मे	१३	उद्यन्नदित्यः	७
इन्द्रं सुपस्य	७	ऊर्ध्वं विभ्रत	१०
इन्द्रमहम्	७	ऊर्ध्वा अस्य	८
इन्द्रो रूपेण	१३	ऋचं साम	१०
इन्द्रावाहि	१३	ऋधङ् मन्त्रः	७
इमं मे अग्ने	६	एका चा मे	८
इमामग्ने	१३	एतं भागम्	६
इमा यास्तिष्ठः	७	एतं रुधस्थाः	६
इमं मवृत्ताः	१२		

एष यमानम्	११	ते घदा	३
पट्टि जीयम्	७	ते हरः	१
भोजोस्योजो	७	त्यमणे क्रतुभिः	१४
घो ते मे	८	त्यमिन्द्रम्	१३
क इदम्	१३	त्यं न इन्द्रोतिभिः	१३
कथं महं	८	त्यं नो मेघ	६
कश्यपस्त्वाम्	१३	त्यया पूयम्	७
कुहं देवीम्	१०	त्यं रघवे	१३
कृष्णां नियानम्	१४	त्यं वीरधान	६
क्षिप्रम्	३	ददिर्हि मगम	८
क्षेत्रियात्	७	दिधे स्वाहा	७,१२
खड्गरेडधि	१३	दिशो घातुः	१
चक्षुः श्रोत्रम्	१०	दिशो धेनवः	१३
जनाद्विभजनीनात्	१०	दीर्घायुन्याय	८
तदिदास	७	दृष्या दृषि	६
नमिन्द्रः	२,१३	दंष्ट्र प्रतान्	१:
ता न प्रजा	१२	देवां देवाय	१:
तांस्त्वयोजाः	७	देवो देवेषु	१:
तास्ते रक्षन्तु	१२	धावापृथित्री	१
तिरदिचराज्ञेः	१०	धीर्धेनुः	१
ते चक्रुः	१	धर्तसि	१
ते त्वा रक्षन्तु	१२	धाता दधातु	१
तेनेमां मक्षिमा	१३	धीती वा ये	१
ते चदन्	८	नर्दी यं तु	१
		नमस्ते बोधिष्ठीभ्यः	१

नमो रुराय	१०	प्रपतेतः	१०
नव प्राणान्	८	प्रपथे पथाम्	१०
नद्योनयः	४	प्राम्नये वाचम्	६
निष्प्रुचः	१४	प्राचीदिष्	१३
निः सालाम्	७	प्राच्यादिशः	१२
ने छत्रुः	७	प्राच्यै त्या दिशे	१३
नेतां ते	८	प्राणापानौ	१२
न्यस्तिक्य	६,१३	प्रातरग्निम्	७
पदज्ञाःस्थ	१३	प्रान्यात्	१०
पयस्वर्तः	७	वृहता मनः	१३
पर्वतादिवो	८	वृहन्नेयाम्	७
पार्थिवस्य	७	वद्य जमानम्	७
पुमान्पुंस	७	वद्यास्य शीर्षम्	७
पुरस्तादयुक्तः	८	शिक्षणो जज्ञे	६
पूर्णा पश्चान्	१०	भूम्यां देवेभ्यः	१३
पूर्वापरम्	४,१०	भ्रातृव्य	६
पृथिवी दग्डः	१२	ममाग्ने दद्ये	७
पृथिवी घेनुः	१३	महत्सधस्यम्	१३
पृथिव्यामग्नये	७	मा त्या क्रव्यात्	१३
पृथिध्यै श्रोत्राय	१२	मा परि देहि	६
प्रजावर्तीः	१०	मुञ्चामि त्या	७
प्रतीचीनफलः	१२	मुमुक्तमस्मात्	१२
प्रथमा ह	७	यच्छ्रयानः	१३
प्रनमद्य	१०	यजूषि यज्ञे	८,१२

यज्ञेन यज्ञम्	१०	यस्माद्वाता.	१३
यज्ञं पति	१३	यस्मिन्विराट्	१४
यत्किञ्चासौ	१०	यस्यव्रतम्	१०
यत्तेदेवा	१०	यस्यास्त आसनि	६
यत्तेदेवा	६	यस्यां गायन्ति	१३
यत्तेवर्च	१३	यस्यां सदो	१३
यथाद्यौश्च	२,७	यस्योरुदु	१३
यथा मांस्म	१३	य आत्मदा	७
यथा वातः	२	य इमां देवः	६
यथा इच्छम्	१०	य इमे द्यावापृथिवी	१४
यथा शेषः	१३	यावसर्पे	१३
यथा सूर्यः	१०	यामद्विनौ	१३
यद्येवं पृथिवी	६	य पत्नं परिपदंति	६
यद्गने तपसा	१०	या थे परि	१३
यद्द संप्रयतीः	७	यार्णवेऽधि	१३
यदद्यत्वा	१०	या शशाप	४
यदाशसा	१०	यास्ते धाना	४
यदेतमाइ प्रात्य	३	यां ते चक्रु	८
यद्देवाम	६	यां त्वा गन्धर्वो	७
यद्येक वृषोसि	६,८,१२	यां छिपद्	१३
यद्राजानः	७	या सुपर्णा.	१३
यद्दीधे	१३	ये अग्नयो	७
यं देवाः स्मरम्	६	ये च धीरा	१३
ययोरोजसा	१०	ये अ पितरः	१२
यस्ने गन्ध	१३	ये त्रिपत्ना	६

ये पुरस्तात्	७	विद्य ते स्वप्न	१३
ये पुरुषे	१३	विद्माशरस्य	७
ये याहवः	१३	वि य अंगार्त्	१३
ये शाखाः	१३	विद्य जित्	६
येषां पदवात्	१३	विषाणा पाशान्	६
ये ३ स्यांस्थ	६	विषासहिम	१३
यो अङ्गयः	१३	विष्णां क्रमोऽसि	१३
योऽजम्	२	विष्णोर्नु कम्	१०
योऽन्येषुः	१०	विहृदयम्	८
यो गिरिषु	७	वीरुतक्षेत्रिय	२
यो नस्तायत	१०	धीहिस्त्राम्	१२
यो भारयति	१३	वैकङ्कतेन	७
यो वा आप	१४	वैकुर्वतम्	२
यो वै नैदाघम्	२, १४	वैश्वानर	६
यो वै कुर्वतम्	१४	शकधूमम्	६
य प्राणेन	१३	शेरभक	२, ७, १२
रथजिताम्	६	शं ते अग्नि	११
रात्रिमाता	७	शं ते नीहार.	१३
वनस्पतीन्वानस्पत्यान्	१३	शिवे ते स्ताम्	१३
वनस्पते	६	शुम्भनी	१०
घपटते	७	शुभंताम्	१२
वायुरमित्राणामि	१३	श्वन्वतीः	१३
वि ते मुञ्चामि	१०	सखासौ	१२
वि देवा	७	स पचामि	१२

समा च मा	१०	सांतपनाः	१०
संज्ञानं न	१०	सान्नरिक्षे	१
संदानं घ	६	सा पितृन्	२
सं धो मनांसि	४	साहस्रः	१२
समं ज्योतिः	७	सिमोवाली	१०
संशित मे	७	सिंहे व्याघ्रे	२
समिद्धो अग्निः	१०	सीरा युञ्जन्ति	७
समिद्धो अथ	८	सुपर्णास्त्वा	८
समिमाम्	३	सुपृदत मृडत	१२
समुत्पतन्तु	७	सूर्यस्य रश्मीन्	१३
सम्यश्च तन्तुम्	१३	सोदकामत्	३
सरस्वती घतेषु	१०	सोमो राजा	१२
सर्वदा	३	स्फूर्मं तम्	२
सर्धानग्रे	१२	स्तुवानम्	७
सधिता प्रसवानाम्	८	स्यस्तिदा	१३
सहृदयम्	७	हरिणस्य	७





## शुद्धि पत्रम् ।

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
विद्वानों	विद्वानों	६	भूमिका ६
स्मृतं	स्मृतम्	३	६
त्रयवसानाः	त्रयवसाना.	१२	८
प्राजापतयोः	प्राजापत्ययोः	१६	१५

शेष अशुद्धियां अनुवाद में ठीक कर दी गई हैं ।

